इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BSOC - 108
आर्थिक समाजशास्त्र

BSOC-108

आर्थिक समाजशास्त्र

समाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. वी. खाखा
टी.आई.एस.एस.,
गुवाहाटी

प्रो. जे.के. पुंडीर,
सीसीएस
विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रो. टी. कपूर,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

डॉ. किरनमई भूशी,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

डॉ. श्रीनिवास राव,
जेएनयू, नई दिल्ली

प्रो. नीता माथुर,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

डॉ. आर. वाशुम,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

प्रो. मधु नागला,
एमडीयू, रोहतक

प्रो. रवीन्द्र कुमार,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

प्रो. जगपाल सिंह,
राजनीति विज्ञान
संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. देवल के. सिंहारॉय
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

डॉ. अर्चना सिंह,
समाजशास्त्र संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई
दिल्ली

प्रो. एस.बी. उपाध्याय,
इतिहास विभाग
संकाय,
सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

क्र. संख्या	इकाई नाम	इकाई लेखक	संपादक (विषयवस्तु, प्रारूप और भाषा)
खंड 1	**आर्थिक समाजशास्त्र का परिचय**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 1	समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था	डॉ. सूरज बेरी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	
इकाई 2	औपचारिकतावाद तथा तात्विकवाद	डॉ. कुसुम लता, क्राईस्ट विश्वविद्यालय, गाजियाबाद, यूपी	
इकाई 3	नया आर्थिक समाजशास्त्र	डॉ. सूरज बेरी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	
खंड 2	**विनिमय के रूप**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 4	पारस्परिकता तथा उपहार	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
इकाई 5	विनिमय एवं मुद्रा	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
खंड 3	**उत्पादन, वितरण एवं खपत की प्रणालियाँ**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 6	शिकार करना और भोजन एकत्रित करना	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
इकाई 7	पशुपालन एवं बागवानी	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
इकाई 8	घरेलू उत्पादन प्रणाली	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
इकाई 9	कृषक अर्थव्यवस्था	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी,	

		कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
इकाई 10	पूंजीवाद	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
इकाई 11	समाजवाद	डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी, कश्मीर विश्वविद्यालय, कश्मीर	
खंड 4	**आर्थिक समाजशास्त्र में समकालीन समस्याएं**		**डॉ. अर्चना सिंह**
इकाई 12	सामाजिक विकास	बी.डी.पी., ईएसओ–11, इकाई 34 से अंगीकृत	
इकाई 13	वैश्वीकरण	डॉ. शैली भाषाजंली	

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अर्चना सिंह
समाजशास्त्र संकाय, सामाजिक विज्ञान
विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संपादक मंडल

प्रो. वी. खाखा
टी.आई.एस.एस.,
गुवाहाटी

शैक्षणिक सलाहकार : डॉ. विनोद कुमार यादव

आवरण : आर. के. एंटरप्राइजेज,

हिन्दी अनुवादक : श्री एम. पी. कमल, नई दिल्ली

टंकण सहयोग : श्री सोनिया

सामग्री निर्माण दल

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

अगस्त, 2021

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN:

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित नहीं किया जा सकता, अनुलिपिक या किसी अन्य साधन द्वारा,

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बिना किसी लिखित आदेश व पुनः इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कोर्स की सूचना विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी कार्यालय, नई दिल्ली–110068 के द्वारा प्राप्त की जा सकती है अथवा विश्वविद्यालय की वेबसाइट http://www.ignou.ac.in देखें

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से कुलसचिव, स.नि.वि. प्रभाग, इग्नू, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसामीडिया

मुद्रित :

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय वस्तु

खंड 1	**आर्थिक समाजशास्त्र का परिचय**	**7**
इकाई 1	समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था	9
इकाई 2	औपचारिकतावाद तथा तात्विकवाद	27
इकाई 3	नया आर्थिक समाजशास्त्र	42
खंड 2	**विनिमय के रूप**	**59**
इकाई 4	पारस्परिकता तथा उपहार	61
इकाई 5	विनिमय एवं मुद्रा	75
खंड 3	**उत्पादन, वितरण एवं खपत की प्रणालियाँ**	**87**
इकाई 6	शिकार करना और भोजन एकत्रित करना	89
इकाई 7	पशुपालन एवं बागवानी	102
इकाई 8	घरेलू उत्पादन प्रणाली	116
इकाई 9	कृषक अर्थव्यवस्था	129
इकाई 10	पूंजीवाद	142
इकाई 11	समाजवाद	154
खंड 4	**आर्थिक समाजशास्त्र में समकालीन समस्याएं**	**167**
इकाई 12	सामाजिक विकास	169
इकाई 13	वैश्वीकरण	187
शब्दावली		**200**
कुछ उपयोगी पुस्तकें		**203**

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

आर्थिक समाजशास्त्र समाजशास्त्र का उप–क्षेत्र है जो आर्थिक गतिविधियों के सांस्कृतिक व सामाजिक आधारों की समझ प्रदान करता है।

इसका उद्देश्य समाजशास्त्र के विद्यार्थियों को समाजशास्त्रीय महत्व तथा समाज में घटित होने वाली स्थानीय एवं वैश्विक आर्थिक गतिविधियों के विश्लेषण से अवगत कराना है।

अनेक विद्वानों का यह मत है कि आर्थिक समाजशास्त्र को एक प्रतिष्ठित विषय के रूप में कोई एक शताब्दी पहले ही स्वीकार किया गया था। परन्तु इसकी जेड़ें पारंपरिक दार्शनिक तथा सामाजिक विचारों में पहले से ही मौजूद थीं। पिछले लगभग 25 वर्षों में आर्थिक समाजशास्त्र ने तेज गति से विकास किया है। अब यह समाजशास्त्र के विशाल व विशिष्ट उप–क्षेत्र के रूप में अपना स्थान प्राप्त कर चुका है।

व्यापक रूप से व्याख्या करें तो आर्थिक समाजशास्त्र को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण कहा जा सकता है, जिसमें वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय तथा खपत से जुड़ी जटिल प्रक्रियाओं के आर्थिक घटनाक्रम शामिल हैं।

अर्थशास्त्र एक विषय के रूप में मनुष्यों के आर्थिक सरोकारों में खतरे उठाने, अनिश्चय के दौर से गुजरने तथा तर्कसंगत व्यवहार करने आदि पर आधारित विश्लेषणों को केंद्र में रख कर चलात है। आर्थिक समाजशास्त्र, इसके ठीक विपरीत, सामाजिक संस्थानों तथा सामाजिक मानदंडों को साथ लेकर चलता है। (एन. जे. स्मेल्सर एवं स्वेद्बर्ग, 2005)।

पहले खण्ड में हमने आर्थिक समाजशास्त्र के उप–क्षेत्र का वर्णन किया है। इसकी पहली इकाई में 'समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था' में सम्बंध के बारे में बताया गया। इकाई 2 में 'औपचारिकतावाद तथा तात्विकवाद' में आर्थिक समाजशास्त्र की दो विचारधाराओं के बारे में बताया गया। इनमें से एक पूंजीवादी विचारधारा है जिसके केंद्र में औपचारिक, तर्कसंगत लाभार्जन की भावना रहती है, तथा दूसरी विभिन्न समाजों व संस्कृतियों में अनुभव के स्तर पर पाई जाने वाली आर्थिक गतिविधियों की सामाजिक–सांस्कृतिक आधारशिला की व्याख्या करती है।

खण्ड दो में विनिमय के रूप पर दो इकाईयों में विचार किया गया है। इसमें सामाजिक–आर्थिक विनिमय के उन रूपों पर विचार किया गया है जो समाज में पाये जाते हैं। विनियम की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के उपहारों के आदान–प्रदान का वर्णन किया गया है। 'विनिमय तथा मुद्रा' इकाई में मुद्रा के उदय तथा उसके विभिन्न रूपों पर विचार किया गया है।

खण्ड 3 में शामिल इकाई 'उत्पादन–प्रणालियां, वितरण एवं खपत' में विभिन्न समाजों में मौजूद विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह इकाई विभिन्न समाजों में पाई जाने वाली विभिन्न आर्थिक गतिविधियों तथा उनसे संबंधित सामाजिक गतिविधियों की प्रकृति की व्याख्या करती है।

पाठ्यक्रम का चौथा खंड अंतिम खंड है। 'आर्थिक समाजशास्त्र' की कुछ समकालीन समस्याएं' शीर्षक से यह खण्ड सामाजिक विकास की समस्याओं पर प्रकाश डालता है। सामाजिक विकास आर्थिक विकास तथा सामाजिक समृद्धि के मूल में अवस्थित है। अंतिम इकाई में वैश्वीकरण पर प्रकाश डाला गया है। वैश्वीकरण की अच्छाइयों और बुराइयों का भी वर्णन किया गया है।

खंड 1
आर्थिक समाजशास्त्र का परिचय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था*

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अर्थशास्त्र तथा समाज

1.3 समाज, संस्कृति तथा अर्थ–व्यवस्था में संबंध

1.4 मार्क्स, मेबर, दुर्खीम, सीमेल बैबलेन तथा अन्य विचारकों की आलेख

- 1.4.1 कार्ल मार्क्स (1818–1883)
- 1.4.2 मेक्स वेबर (1864–1920)
- 1.4.3 ऐमाइल दुर्खीम (1858–1917)
- 1.4.4 जॉर्ज सीमेल (1858–1918)
- 1.4.5 थॉरस्टीन वेबलेन (1857–1929)
- 1.4.6 टेलकॉट पार्सनस् (1902–1979) तथा नील स्मैल्सर (1930)

1.5 आर्थिक विकास : समस्याएं तथा विरोध

1.6 वाशिंगटन सहमति

1.7 सारांश

1.8 संदर्भ

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझने में सक्षम होंगे :–

- अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र का सम्बंध;
- समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के बीच संबंधों की चर्चा;
- शास्त्रीय विचारकों मूख्य विचार जैसे मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, सीमेल वैबलेन तथा अन्य समस्याऐं व उनके विरोधों के संदर्भ में आर्थिक विकास तथा संदर्भित विचार; और
- आर्थिक समाजशास्त्र के संदर्भ में वाशिंगटन सहमति पर चर्चा।

1.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में आर्थिक समाजशास्त्र की पहली इकाई समाज, संस्कृति व अर्थव्यवस्था के बीच सम्बंधों के विवरण तथा व्याख्या से आरंभ होती है। जीवन के ये तीन महत्वपूर्ण पहलू जीवन सांस्कृतिक तथा सामाजिक आपस में कैसे सम्बंधित हैं

* डॉ. सूरज बेरी द्वारा लिखित।

तथा सामाजिक विज्ञान व समाजशास्त्र विभिन्न समाजों में आर्थिक व्यवहार की जटिलताओं पर प्रभाव डालती है।

इस इकाई 'समाज, संस्कृति व अर्थव्यवस्था' में हम सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिदृश्यों का परिचय देते हुए सामाजिक परिवर्तनों तथा शास्त्रीय विचारकों व अन्य समाजशास्त्रियों के विचारों को समझाने का प्रयास करेंगे।

विभिन्न समाजों में आर्थिक विकास किस प्रकार घटित हो रहा है तथा उसके कैसी–कैसी समस्याएं सामने आ रही हैं, यह बताया जायेगा। आर्थिक तथा विकासात्मक परिवर्तनों की प्रक्रिया में मौजूद सततताओं पर विचार किया जा चुका है। इस इकाई में सामाजिक परिवर्तनों की प्रकृति पर विचार किया जायेगा जिसका जो 1990 के दशक से समाज में विशेष रूप से देखा जा रहा है। इसी काल खंड में आर्थिक विकास में एक उछाल आया था जिसे वाशिंगटन सहमति कहा जाता है।

1.2 अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र

अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के सम्बंधों में जैसाकि सामाजिक विज्ञानविद प्रतियोगिता तथा प्रतिस्थापन की प्रवृति के स्थान पर पारस्परिक सहयोग व संपूरकता की प्रवृत्ति अधिक है। आर्थिक परिदृश्य पर सामाजिक दृष्टि को केंद्र में रखते हुए विचार किये जाने की आवश्यकता है। कुछ नये शास्त्रीय अर्थशास्त्री (जैसे पेरैटो) आगाह करते हैं कि आर्थिक परिदृश्यों का विश्लेषण सामाजिक अंतर्दृष्टि के बिना अधूरा है। 19वीं शताब्दी पूर्वार्ध के अनेक शास्त्रीय समाजशास्त्रीय इस बात से अवगत थे कि उनके चारों ओर आर्थिक व सामाजिक दुनिया तेजी बदल रही है। यद्यपि उन दिनों समाजशास्त्र की सही पहचान नहीं मिल पाई थी परन्तु समाजशास्त्रियों को इस बात का पूरा–पूरा ध्यान था कि उनके चारों ओर पूंजीवाद, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा प्रौद्योगिक विकास तेज गति से हो रहा है और समाज पर उसका प्रभाव पड़ना तय है।

काल मार्क्स तर्क देते है कि सामाजिक परिवर्तन और पुनरूत्पादन अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण पहलू हैं। ज्यादा स्पष्टता से कहें तो समाज मूलतः अर्थव्यवस्था के इर्द–गिर्द संगठित होता है तथा सामाजिक वर्गों की संरचना उत्पादन के खास स्वरूप पर निर्भर करती है। जबकि मेक्स बेबर ने आर्थिक संरचनाओं तथा सामाजिक गतिविधियों के बीच संबंधों का अध्ययन किया था। उनका मानना है कि हमारी अर्थव्यवस्थाओं के निर्माण में सांस्कृतिक घटकों की विशेष भूमिका रहती है। आधुनिक पश्चिमी दुनिया में 'पूंजीवाद का उदभव' में प्रतिवादी सोच की अधिक प्रासंगिकता है। ऐमाइल दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों तथा सामज को सामूहिक चेतना के बीच सम्बंधों का अध्ययन किया था। दुर्खीम आधुनिक समाजों में श्रम विभाजन के विशिष्ट गतिविज्ञान की भी समझना चाहते था तथा यह भी जानना चाहते थे कि श्रम विभाजन समूहों तथा एक जुटता के निर्माण की व्याख्या किस प्रकार करता है।

वे इस बात को रेखांकित करते है कि आधुनिक प्रौद्योगिक के विकास के साथ–साथ समाजों में विविधता और बढ़ी है तथा भिन्न–भिन्न प्रकार के सामाजिक सामंजस्यों का उदय हुआ है। अर्थव्यवस्था और समाज के ये वर्गीय विश्लेषण आर्थिक समाजशास्त्र की आधारशिलाएं हैं। सामाजिक सिद्धांतकारों ने उभरते औद्योगिक तथा व्यावसायिक

क्रांतियों के साथ ताल–मेल बैठाते हुए सामाजिक महा–परिवर्तन लाने हेतु पारंपरिक–आधुनिक, स्तर–अनुबंध आदि अनेक श्रेणियों की पहचान की है।

अर्थव्यवस्था के विशिष्ट स्वरूप के विकास की व्याख्या करने के लिए शास्त्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक समाजशास्त्र को साथ लेते हुए मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था तथा वर्गीय विश्लेषण सिद्धांत तथा वेबर की संस्थानिक प्रमुखता पर जोर देते हैं।

इसी प्रकार दुर्खीम की संरचना की अवधारणा संरचना के सिद्धांत के विकास में सहयोगी है जिससे बाजार के व्यवहार तथा संस्थानों की रणनीतियों आदि को समझा जा सकता है। बाद के लेखक जैसे पार्सन्स तथा पोलान्यी की भूमिका आर्थिक समाजशास्त्र के क्षेत्र को सही रूप देने के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

19वीं शताब्दी में अर्थशास्त्री प्रमुखतः बाजारों तथा उनकी कार्यप्रणालियों को मूलभूत परिकल्पनाओं की वस्तुपरक व्याख्या करने तथा उनके लिए गणितीय प्रतिमान विकसित करने में लगे रहे। दूसरी ओर, समाजशास्त्री बाजार के व्यवहार तथा गतिविधियों को सामाजिक क्रियाओं का एक रूप मानते रहे तथा अनेक संरचनात्मक घटकों को महत्व देते रहे। सामाजिक परिवर्तन के साथ शास्त्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था के अनेक अनुमानों तथा आधुनिक सिद्धांतों को भारी चुनौतियों का सामना करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था तथा समाज के सिद्धांतों में अनेक सुधार हुए।

क्योंकि यह इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई है, इसमें आर्थिक सामजशास्त्र की व्यापक रूप रेखा भी प्रस्तुत की जायेगी। अगली इकाइयों में अनेक संबंधित समस्याओं तथा वाद–विवादों पर प्रकाश डाला जायेगा। आइए अब समाज, संस्कृति व अर्थव्यवस्था के संबंधों पर आधारित मूलभूत अवधारणाओं पर विचार करें।

बोध प्रश्न 1

1) अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र में क्या संबंध है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) किसी एक शास्त्रीय समाजशास्त्री के अर्थशास्त्र पर विचारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 समाज, संस्कृति तथा अर्थव्यवस्था में सम्बंध

आर्थिक समाजशास्त्र मनुष्यों की प्रकृति को सामाजिक संदर्भ में समझाने के लिए एक विशिष्ट प्रतिमान तो है ही, साथ ही नवशास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत की अवधारणा को हल्के से लेने की प्रवृत्ति का सख्त आलोचक है। आर्थिक समाजशास्त्र, आर्थिक एवं सामाजिक परिदृश्यों के बीच संबंधों का अध्ययन करता है तथा उनकी बारीकियों पर अनुसंधान भी करता है। शास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत के प्रेरक एडम स्मिथ मानव प्रकृति तथा व्यवहार की स्थिरता की अवधारणा पर महत्वपूर्ण काम किया है।

यह भी माना जाता है कि मनुष्य बौद्धिक प्राणी हैं और बाजार से वे जो खरीदते हैं, वह उत्पाद को उपयोगिता के आधार पर खरीदते हैं। समाजशास्त्री यह मानते हैं मनुष्यों के कार्यों के पीछे सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ होते हैं। अंतः उनके सामाजिक कार्यों के पीछे सांस्कृतिक विविधिताएं भी होती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके कार्यों के बीच तुलना नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए मेक्स वेबर कहते है कि किसी भी सामाजिक कार्य की मुख्यतः तीन सामाजिक तरीकों से व्याख्या की जा सकती है – परंपरा, प्रभाव तथा तर्कसंगतता व वैधानिकता (वेबर, 1978)।

पियरे बॉर्दयू का तर्क है कि व्यक्ति की इच्छा न केवल नैतिक मानदंडों से बंधे होते हैं, जैसा कि कांत कहते है, वे सामाजिक स्थितियों–परिस्थितियों से अधिक प्रभावित होते हैं।

बाक्स 1.0 : पारंपरिक नगरीय अर्थव्यवस्था

प्राचीन काल

नगरीय अर्थव्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था की युगों से ही अनिवार्य अंग है। भारतीय प्राचीन सभ्यता, जैसे सिंधु घाटी सभ्यता (2600 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व) भारत की सुविकसित नगरीय सभ्यता मानी जाती है जिसका व्यापक ग्रामीण कृषि प्रधान आधार था। पुरातात्विक खुदाई से पता लगा है कि भारत के अनेक नगर तथा महानगर सिंधु घाटी सभ्यता से गुलजार थे। जैसे हड़प्पा तथा मोहनजोदारों (जो अब पाकिस्तान में है) लोथल, कालीबंगान, बनवाली (भारत)।

ऋग्वेद काल का (1500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व) आरंभिक चरण नगरीय सभ्यता से अलग थलग जाना जाता है। ऋग्वेद काल के बाद के वर्षों में अर्ध–घूमंतु सभ्यता थी और लोगों का जीवन देहाती था। (1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व) तक आते आते लोग गांवों में बस गये थे और खेती उनका एक मात्र व्यवसाय बन गई थी। समकालीन साहित्य में 60 कस्बों का विवरण प्राप्त होता है, जिनमें राजगृह, पाटलीपुत्र, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी आदि प्रमुख थे। कस्बों और नगरों का लगातार विकास होता गया। मौर्य काल तथा उसके बाद की अवधि में गुप्त साम्राज्य के दौरान भी विकास का यह क्रम जारी रहा। गुप्त साम्राज्य के बाद के काल में देश में नगरीय क्षरण का दौर आया। नौवीं शताब्दी के बाद इस प्रवृत्ति में बदलाव आया। आइए, इस अवधि की नगरीय अर्थव्यवस्था के कुछ पहलुओं पर, व्यापार, वाणिज्य, कला तथा शिल्प पर, गिल्ड प्रणाली तथा सामाजिक वर्गों पर विचार किया जाये।

i) व्यापार व वाणिज्य – जैसा कि हम जानते है, गैर–कृषि आधारित व्यवसाय नगरीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान रखते हैं। व्यापार व वाणिज्यि महत्वपूर्ण गतिविधियां हैं। बाहय तथा आंतरिक व्यापार का विवरण प्राचीन काल में समकालीन साहित्य में तथा पुरातात्विक अवशेषों में पाया जाता है। व्यापार तथा वाणिज्य उत्थान व पतन का विवरण दोनों कालों में पाया जाता है।

प्राचीन भारत में भी कस्बों तथा नगरों की ऐसी ही स्थिति थी। नगरीय व्यापारी नगरों के उत्पादों तथा कृषि उत्पादों का आंतरिक व्यापार करते थे। बुद्ध काल तक धातु के सिक्कों का चलन आरंभ हो गया था जिससे आर्थिक लेन–देन को प्रोत्साहन मिला। अब बाहरी क्षेत्र में भी व्यापार दूर–दूर तक होने लगा। रोम, अरब देश, पर्सिया, चीन तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में भारत के लोग व्यापार करने लगे। विदेशी व्यापार में विलासिता की सामग्री प्रमुख रूप से शामिल थी। इनमें शिल्प, हाथ के बने सुन्दर वस्त्र, नगरीय अर्थव्यवस्था की सामग्री, हाथी दांत के समान, बर्तन आदि शामिल थे। विदेशी व्यापार भारत के हित में था। रोमन लेखक प्लिनी ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया था कि रोम का सोना भारत के साथ व्यापार में भारत पहुँच रहा था (शर्मा 1983–144)।

ii) **कला एवं शिल्प** – प्राचीन भारतीय नगरीय अर्थव्यवस्था का एक अन्य पहलू था जिसके कारण विभिन्न कला एवं शिल्प से जुड़े लोगों का जीवन यापन चलता था। इसमें लकड़ी का काम, कारीगरों का लुहारों का काम, चमड़े का काम, मिट्टी के बर्तन, हाथी दांत का काम, जुलाहों, चित्रकारों आदि के काम शामिल थे।

iii) गिल्ड प्रणाली – नगरीय अर्थव्यवस्था में गिल्ड प्रणाली (श्रेणी पद्धति) का बड़ा योगदान था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जजमानी पद्धति के विपरीत नगरीय शिल्पकार तथा व्यापारी शिल्प तथा व्यापार की श्रेणियां बनाकर काम करते थे। खास श्रेणी के सदस्य अपनी श्रेणी के शिल्प से व्यापार से ही जुड़ते थे। जैसे कुंभकारों की श्रेणी, लुहारों, जुलाहों तथा हाथी दांत के कारीगरों की अलग–अलग श्रेणियां थी। उत्पादन में श्रेणी पद्धति का विशेष योगदान था। जन रूचियों को पैदा करने में भी इनका भारी योगदान था। (थापर 1976 : 109) एक श्रेणी से शिल्पकारों की बड़ी संख्या जुड़ी होती थी। इन निकायों के अंतर्गत काम करने में उनके कामों को सुरक्षा मिलती थी। प्रतिस्पर्धा तथा सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से अपनी–अपनी श्रेणी में कारीगर या शिल्पकार सुरक्षित महसूस करते थे। श्रेणियां में काम करने के अपने नियम थे, आचार संहिताएं थीं, उनके कामों की उत्पादों की गुणवत्ता का अपना विशेष स्थान होता था। यहाँ तक कि इसकी कीमतें भी पूर्व निर्धारित होती थी जिससे शिल्पकार व उपभोक्ता दोनों को सुविधा रहती थी। दोनों पक्ष मिलकर उत्पादों की कीमतें तय करते थे।

अनेक विभिन्न श्रेणियों से जुड़े लोग कस्बों व नगरों के विभिन्न भागों में रहते थे। कस्बों व नगरों के ये मुहल्ले इनकी श्रेणियों से जाने जाते थे, जैसे दर्जियां, सुनारों या लुहारों पर मुहल्ला या गली। श्रेणियों के मुखियों को भोजका कहा जाता था। वरिष्ठ सदस्यों की एक छोटी परिषद होती थी और भोजका परिषद के मुखिया होते थे। श्रेणियों की परिषद के वरिष्ठ सदस्य श्रेणी न्यायालयों का नियंत्रण करते थे। श्रेणी धर्म के अनुसार न्यायालय चलाये जाते थे। श्रेणियों के नेता नगरीय जीवन में बड़ी हैसियत वाले लोग माने जाते थे। शासक उनका सम्मान करते थे।

मजदूरों के भी निकाय होते थे जो श्रमिकों के हितों का ध्यान रखते थे। इनमें एक तरह के निकायों की प्यूगा कहा जाता है। इसके सदस्य कारीगर तथा अनेक प्रकार के शिल्पकार होते थे जो खास उद्यम–घरानों से संबंधित होते थे। जैसे नगरों का निर्माण करने वाले, मंदिरों का निर्माण करने सहकारी कर्मियों द्वारा किया जाता था। जिनमें विशेष प्रकार के कुशल श्रमिक होते थे जैसे शिल्पकार व इंजीनियर आदि।

इसके अलावा श्रेणियां बैंक, वित्त प्रबंधन तथा ट्रस्ट की भूमिका भी निभाती थीं। लोग श्रेणियों में अपना धन जमा रखते थे और ब्याज पाते थे। पैसा जमा करने वाले लोग प्रायः व्यापारी होते थे इन्हें श्रेष्टी नस या साहूकार कहा जाता था (थापर 1987 : 112)।

संदर्भ – ईएसओ 12 : भारत में समाज; इकाई 11: नगरीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ : 28।

1.4 मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, सीमेल वैबलेन तथा अन्य विचारकों के आलेख

समाज के आर्थिक व सामाजिक जीवन के गतिविज्ञान की व्याख्या करने वाली विविध परम्पराएं समाज में विद्यमान हैं। आर्थिक समाजशास्त्र की आरंभिक विचारधाराओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – उत्पादन के स्वरूपों की व्याख्या करने वाली कार्ल मार्क्स की वर्गीय विभाजन वाली विधारधारा। यह विचारधारा व्यापक सामाजिक संरचना गतिविज्ञान की व्याख्या करती है जिसके अनुसार सम्बंध भौतिक उपलब्धियों के इर्द–गिर्द निर्मित होते हैं। वर्ग विभाजन, किरायेदारी व लाभ–प्राप्ति का उत्पादन, आर्थिक विविधताएं तथा सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे पर पूंजीवादी संरचना का प्रभाव। संगठनों व संस्थानों के अध्ययन पर वेबर जोर देते है। यह संस्थानों तथा सामाजिक कर्ताओं जैसे राज्य, सामाजिक वर्गों आदि के बीच पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण करता है। औद्योगिक रुचियों तथा कृषि सरोकारों के बीच अंतर की व्याख्या करता है।

आर्थिक समाजशास्त्र की दूसरी विचारधारा अभिजात वर्ग के अध्ययन को केंद्र रखती है। अभिजात वर्ग के लोगों के आपस में सम्बंधों तथा सामाजिक संसाधनों पर उनकी एकाधिपत्यता का विवरण प्रस्तुत करती है। अभिजात वर्गों के लोग सामाजिक व राजनैतिक नेताओं से किस प्रकार सम्बंध स्थापित करते हैं तथा इन सम्बंधों के आधार पर किस प्रकार राष्ट्रीय नीतियों तथा व्यापार में बढ़त हासिल करते हैं। तीसरी विचारधारा संस्थागत विचारधारा है। दुर्खीम के अनुसार इस विचारधारा के अनुयायी विश्वासों, सामाजिक मिथकों, विचारों अर्थव्यवस्थाओं की सामाजिक संरचना आदि का अध्ययन इस विधि से करते हैं। आर्थिक समाजशास्त्र अपनी निजी पहचान स्थापित करने में बहुत सुस्त रहा है, इसलिए वह समाजशास्त्र से अलग एक स्वतंत्र विचारधारा के रूप में स्वयं को स्थापित नहीं कर पाया है।

1.4.1 कार्ल मार्क्स (1818–1883)

अब हम आर्थिक समाजशास्त्र की बौद्धिक व्याख्याओं की ओर रूख करते हैं। कार्ल मार्क्स के लेख आर्थिक समाजशास्त्र से जुड़े प्रमुख प्रश्न उठाता है। उनके अनुसार मानव समाज का सबसे महत्वपूर्ण घटक श्रमिक है। अन्य सभी गतिविधियाँ मजदूर के इर्द–गिर्द घटित होती हैं। अपनी प्रमुख पुस्तक 'कैपिटल' में कार्ल मार्क्स ने इस बात

के लिए शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों की आलोचना की है कि उन्होंने मालिक और मजदूर के बीच मौजूद टकराव का पर्याप्त वर्णन नहीं किया। कार्ल मार्क्स ने मूलभूत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मौलिक संस्थानों में मौजूद सामाजिक विसंगतियों पर विशेष जोर दिया है। दूसरे शब्दों में उसने उत्पादन के संसाधनों पर कब्जा किये बैठे पूंजीपतियों तथा मजदूरी पर गुजारा करने वाले श्रमिकों के सवाल पर विशेष रूप से जोर दिया है। जो वस्तुओं के उत्पादन तथा आय के बंटवारे से सीधा जुड़ा हैं। कार्ल मार्क्स की दृष्टि जर्मन दार्शनिक हीगल से प्रभावित थी जो वर्ग निर्माण तथा सामाजिक रूपांतरण के लिए द्वंद्वात्मक स्थिति को जिम्मेदार मानता है। पूंजीवाद समाज को सुस्पष्ट वर्गों में बांटता है तथा मालिक व मजदूर या अमीर व गरीब के बीच टकराव की स्थिति को जन्म देता और उसे बनाये रखता है। इससे जो प्रगतिवादी संघर्ष जन्म लेता है पुरानी आर्थिक संरचना को उखाड़ फेंकने का इरादा रखता है। मजदूरों का निरंतर शोषण करते हुए मालिकों के मुनाफे को बढ़ाते चले जाने की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति पूंजीवाद की जड़ों को गहराती चली जाती है। अपनी पुस्तक कैपिटल (1867–94) में राजनैतिक अर्थव्यवस्था की आलोचना के पीछे कार्ल मार्क्स पूर्वाग्रही लगता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के संस्थानों पर निजी आधिपत्य बनाये रखना तब संभव नहीं हो सकता है जब पूंजीपति को लाभ न मिल पा रहा है। परन्तु लाभ आखिर आता कहां से है? जब एक मजदूर उत्पादन की प्रक्रिया में जुटता है तब वह उत्पादों को उस वेतन से कहीं ज्यादा मूल्यवान बना देता है जितना वह मालिक से प्राप्त करता है। श्रमिक का पगार से अधिक काम करके देना। कम वेतन लेने और अधिक मूल्य का काम करके देने के बीच जो अंतर होता है, वहीं पूंजीपति के लाभ का स्रोत निर्मित करता है। फिर भी प्रतियोगिता की स्थिति में निजी तौर पर पूंजीपति उद्यमी और अधिक स्थिर पूंजी लगा कर नई मशीनें शामिल कर लेते हैं तथा काम पर आवश्यकता से कम मजदूर लगाते हैं। इस प्रकार वे श्रमिकों पर तुलनात्मक रूप से कम खर्च करते हुए अपेक्षाकृत अधिक मुनाफा कमाने लगता हैं। जब तक अन्य पूंजीपति उनकी प्रतियोगिता में उसी तरह का नवीनीकरण नहीं कर लेते। इसके मुख्यतः दो परिणाम होते है – पहला, यह कि इससे बेरोजगारी की स्थिति पैदा हो जाती है और श्रमिक वर्ग के जीवन स्तर में गिरावट आ जाती है। दूसरा, यह कि अंततः मुनाफे की दर में गिरावट आने लगती है और उत्पादन में उछाल कम हो जाता है। मार्क्स की दृष्टि में मुनाफा मजदूर के शोषण पर निर्भर करता है। अपने ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर मार्क्स का मानना है कि वर्गीय संरचना में तथा सांस्कृतिक व राजनैतिक चेतना तथा सामाजिक वर्गों की गतिविधियों में भेद उत्पन्न हो जाता है। (1850 में फ्रांस की क्रांति तथा एट्टीन्थ ब्रूमेयर ऑफ लुइस बोनापार्ट, 1852 इसके स्टीक उदाहरण हैं)। कार्ल मार्क्स का यह भी विश्वास था कि श्रेष्ठ शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों की विरासत स्थापित हो जाने के बाद बाजारी प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादन शैली पूंजीवदी होती चली गई और विभिन्न देशों के बीच मतभेदों में कमी आई।

1.4.2 मेक्स वेबर (1864–1920)

1890 के आरंभिक दशकों के दौरान मेक्स वेबर के शोध ने आर्थिक समाजशास्त्र के बारे में महत्वपूर्ण सैद्धांतिक सवाल खड़े किये, साथ ही उस महत्वपूर्ण भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित किया जो आर्थिक व्यवहार को समझने के लिए गैर–आर्थिक सांस्कृतिक तथा संस्थागत स्थितियों ने निभाई थी। मेक्स वेबर के शोध 'द प्रोटैस्टेंट एथिक एण्ड द स्प्रिट ऑफ केपिटेलिज्म' को आधुनिक पूंजीवाद के उद्भव के सिद्धांत

की आधारभूत उद्घोषणा के रूप में स्वीकार किया गया। अपने शोध में मेक्स वेबर ने यह प्रश्न उठाया पूंजीवाद उसी में से क्यों उभरा जहां यह उत्पन्न हुआ था।

मेक्स वेबर ने दावा किया कि अनेक समकालीन अर्थशास्त्री उन सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भों के समझ नहीं पाये जिनमें पूंजीवाद का जन्म हुआ था। उन्होंने अनेक सभ्यताओं के सांस्कृतिक मूल्यों का पता लगाया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कट्टरता की सोच ने काल्विनवाद को जन्म दिया जिसने पूंजीवादी विचारों की संरचना की। उनके अनुसार पूर्वनिर्धारण के सिद्धांत ने अनेक लोगों को आर्थिक संपन्नता के मामलें में 'चयनित होने' के चिन्ह के संदर्भ में देखा जा सकता है।

इसके पश्चात अनेक लोग अपने जीवन में मिले कार्यो को अपनी नियति के रूप में स्वीकार करने लगे। काल्विनवाद के सिद्धांतों का पालन करते हुए मेहनत करना, निवेश करना तथा मुनाफा कमाना या बचत करना आदि को लोग सफलता के घटकों के रूप में स्वीकार करने लगे और महत्वपूर्ण बनने के रास्ते तैयार करने लगे। उदाहरण के लिए जो कठोर परिश्रम करते थे उन्हें पवित्र, ईमानदार तथा ईश्वरीय पक्ष के मानने वाले समझा जाने लगा। परिणामस्वरूप काम लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण तथा कम खर्चीला होने के कारण ऊँचे आर्थिक स्तर का प्रतीक बन गया।

यद्यपि पूंजीवादी भावना अब केवल मुनाफा कमाने के बहाने तलाशने वाली मनोवृत्ति मात्र नहीं रह गई, बल्कि पूंजी के उत्पादन बढ़ाने वाले मामलों में उपयोग करने वाली मानसिकता के रूप में आदर पाने लगी। विलासिता तथा निजी सुख की सामग्री जुटाने को उस पर जो ठप्पा लगा था, वह हट गया। इस प्रकार वे तर्क देते है कि यह तर्क पूंजीवाद के अभ्युदय की आधारशिला बन गया। मेक्स वेबर के शोध के बारे में मजेदार तर्क दिया जाता है कि इसने यूरोप के सांस्कृतिक संदर्भ तथा पूंजीवादी उद्यमता के संरचनात्मक विकास को ऐतिहासिक जटिलता में उलझा दिया है। उन्होंने सुझाव दिया कि उद्यमपरक गतिविधियों को सदा एक सी बनी रहने वाली न माना जाय, बल्कि गतिशील तथा उन संस्थागत संदर्भों पर आधारित माना जाये जिनकी स्थापना इससे जुड़े लोग करना चाहते हैं।

उनका विश्वास था कि उत्पादन के लिए तथा लाभ व वित्त के सशक्तीकरण के लिए उपयुक्त संस्थागत संरचना का होना अनिवार्य है। यदि ये व्यवस्थाएं उद्यमपरकता की वृद्धि में सहयोगी होंगी केवल तब ही आर्थिक विकास की गारंटी दी जा सकती है। मेक्स वेबर के जर्मन समाज पर किये गये शोध में उद्यमता की खोज ने उसे पूंजीवाद के उद्गमों से जुड़ी वृहत सामाजिक समस्याओं पर विचार करने तथा इसके क्षेत्रीय विकास के लिए उपयुक्त धरातलों को तलाशने के लिए विवश कर दिया। इस काम में उन्हें लम्बा समय लगा। मेक्स वेबर ने अपने वर्ग सूत्र का उपयोग आर्थिक समाजशास्त्र के विकास में योगदान देने के लिए भी किया। उनका मानना था कि यदि अनुभवजन्य वास्तविकताओं पर 'आदर्श प्रारूप' न चढ़ने दिया तो अनुभव के वास्तविक अस्तित्व तक पहुंचा जा सकता है। समाजशास्त्र के स्वरूप निर्धारण के संदर्भ में उसके निष्कर्षों की यह विशेषता विशेष महत्व रखती है।

1.4.3 ऐमाइल दुर्खीम (1858–1917)

दुर्खीम का विचार था कि आर्थिक घटक सामाजिक गतिविधियों पर निर्भर होते हैं, क्योंकि ये सामाजिक संस्थानों, रूझानों तथा मूल्यों पर, सामाजिक निर्भरता के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। ऐसे विचारों ने आर्थिक सिद्धांत तथा शोध के अंगों को विशेष

रूप से प्रभावित किया है। अतः आधुनिक आर्थिक समाजशास्त्री दुर्खीम को आर्थिक समाजशास्त्र का जनक मानते हैं। दुर्खीम और वेबर दोनों ने आर्थिक समाजशास्त्र को स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित करने के लिए बहुत प्रयास किए परन्तु वे असफल रहे। दुर्खीम ने वेबर से अलग हट कर अर्थशास्त्रियों की इस बात के लिए आलोचना की थी कि वे अर्थशास्त्र को सामाजिक पक्षों से अलग रखने का प्रयास करते रहते हैं। दुर्खीम ने औद्योगिक समाजों के उद्‌भव का गहराई से अध्ययन किया था तथा सामुदायिक जीवनों में आने वाले परिवर्तनों की समाजशास्त्रीय व्याख्याएं की थीं। दुर्खीम का जीवन समाजशास्त्र के लिए समर्पित था। अपनी पुस्तक 'द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' में दुर्खीम ने दावा किया है कि प्रौद्योगिकी के विकास तथा नगरीकरण के विस्तार के कारण अनेक प्रकार के प्रभाव एक साथ आये हैं और इससे अनेक प्रकार के बदलाव देखने को मिले हैं। उनके सामाजिक सम्पर्क के ढंग अलग–अलग हैं। कुछ लोग विशेष प्रकार के कौशल अर्जित करने में लगे हैं। औद्योगिक युग आरम्भ होने से पहले सभी प्रकार के कार्यों में लगना सम्भव नहीं था। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के परिणामस्वरूप लोग खास प्रकार के कामों में जुटे और एक दूसरे पर उनकी निर्भरता में वृद्धि हुई। इससे सामाजिक विविधताओं तथा भेद–भावों में भी वृद्धि हुई है और आधुनिक समाज में जैविक एकजुटता उत्पन्न हुई है। श्रम विभाजन के नये रूपों के सामने आने के कारण तथा सामाजिक संरचना के अधिक जटिल हो जाने के कारण समाज में भारी बदलाव दिखने लगे हैं।

इस प्रकार, दुर्खीम ने महत्वपूर्ण उपयोगी अर्थशास्त्री उत्पन्न किये जो मानव समाज की सामान्य प्रकृति की तर्कसंगतता का राग अलपाते थे। आधुनिक औद्योगिक समाज में कानूनों के मामले में भारी परिवर्तन देखने को मिला। पहले के विरोधी कानूनों के स्थान पर प्रतिबंधात्मक कानूनों की मांग हुई। लचीले दंड विधान, जैसे जुर्माने को कारावास की तुलना में अधिक पसंद किया गया। समाज में लोग व्यक्तिवाद के दौर से गुजरे – खपत, सोच तथा मूल्यों पर व्यक्तिवाद का प्रभाव देखने को मिला। दुर्खीम का पहला महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत कार्य के सिद्धांत की आलोचना की और उसके स्थान पर संस्थागत सिद्धांत पर जोर दिया। मौलिक दृष्टि से दुर्खीम का सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह था कि आधुनिक समाजों में आर्थिक गतिविधियों का संगठन सामाजिक रूप से विघटनकारी था क्योंकि इसमें श्रम विभाजन का स्वरूप असामान्य हो गया।

इसके बाद दुर्खीम, हालांकि उन्होंने नये विषयों में रुचि लेना आरंभ कर दिया था। व्यक्तियों का वास्तविक आर्थिक व्यवहार नैतिक मान्यताओं व नियमों से प्रभावित होता गया। समाज के बदलते स्वरूप के साथ–साथ नैतिक मान्यताएं व नियम भी बदलते गये। इन संस्थागत घटकों ने आर्थिक विकास को प्रभावित किया तथा आर्थिक विकास के अनुसार उनमें भी बदलाव आया।

परंपरागत व्याख्याओं के अनुसार अर्थशास्त्रियों में मान्य श्रम विभाजन पर व्यक्तिगत कार्यों का विशेष प्रभाव पड़ा। क्योंकि इससे उन्हें लाभ हुआ। दुर्खीम ने पाया कि उसका तर्क अस्थिर था क्योंकि एक भी व्यक्ति आसानी से अधिक उत्पादन के लाभों और हित साधन की सम्भावनाओं को न समझ सकता था, न उनकी कल्पना कर सकता था। दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन के कारणों को एक अलग सामाजिक स्रोत में तलाशा जा सकता था। सामाजिक संरचना की विविधताएं तथा सामाजिक संबंधों की प्रकृति में इसका समाधान तलाशना जरूरी हो गया था। लोगों को आपस

में जोड़ने तथा उनके एकजुटता के तौर–तरीकों में श्रमि विभाजन के आयाम व स्वरूप निहित हो गए।

1.4.4 जार्ज सीमेल (1858–1918)

सीमेल ने अपनी पुस्तक 'द फिलोसफी ऑफ मनी' (1900) में लिखा है – समकालीन पूंजीवादी समाज में पैसा एक बड़ा संस्थान है। सीमेल के अनुसार आधुनिक समाज में पैसा लोगों के बीच सम्बंधों के निर्माण व निर्वहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पैसे के इस्तेमाल अथवा पैसे की अर्थव्यवस्था के इस्तेमाल के उद्‌भव तथा परिणामों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से आधुनिक समाज को समझना आवश्यक है। सीमेल के लिए पूंजीवाद एक विशेष आर्थिक प्रणाली है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था का परिणाम होता है। इसलिए उन्होंने पूंजीवाद की संस्थागत आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया। वे पूंजी आधारित अर्थव्यवस्था में सामाजिक परिणामों पर सहमत थे जैसे सामाजिक सम्बंधों तथा जीवन शैलियों में तर्कसंगतता तथ निव्यक्तिगतता का बढ़ना। सीमेल के अनुसार पूंजीवाद एक आर्थिक प्रणाली है जिसमें पूंजी का निजी हाथों में इकट्‌ठा होना अपेक्षित है। इस अर्थव्यवस्था में पूंजी पर धन का इस्तेमाल व्यापक रूप से होता है। धन को आदान–प्रदान के उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। धन आधारित अर्थव्यवस्था में इससे जुड़े लोगों का कार्य क्षेत्र व्यापक हो जाता है। आर्थिक गतिविधियों में धन को संचालन शक्ति के रूप में इस्तेमाल करने के लिए एक आधारभूत गैर–आर्थिक पूर्ति जुड़ी होती हैं। धन को किसी समय उत्पादों में बदल देने की जो क्षमता धन में मौजूद रहती है, उसमें विश्वास रखना। धन इकट्‌ठा करने के पीछे उस विश्वास का अटूट होना जरूरी हैं जो एक सांस्कृतिक स्थिति से उत्पन्न होता है जिसे संस्थागत घटकों का सहयोग प्राप्त है, जिसकी वैधता तथा राजनैतिक शक्ति द्वारा संरक्षण की स्थिति बनी रहती है तथा जिसे कानूनी व्यवस्था द्वारा गारंटी दी जाती है।

इस अर्थ में धन एक सार्वजनिक संस्थान बन जाता है। सीमेल ने इस बात को रेखांकित किया है कि धन आधारित अर्थव्यवस्था एक शक्तिशाली घटक है। प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के विघटन की स्थिति में आत्म–उपभोग के लिए उत्पादन संभावना इसमें धन आधारित अर्थव्यवस्था में अंतर्निहित होती है। इस प्रकार इस अर्थव्यवस्था से केंद्रीभूत अवस्था का निर्माण होता है जो धन पर नियंत्रण रखने के मौलिक कार्य को पूरा करती है।

इस प्रकार आधुनिक राज्य व्यवस्था कराधान द्वारा संचालित होती है जिसमें नौकरशाही तथा सैन्य बलों को सुव्यवस्थित रखने की केन्द्रीभूत शक्ति निहित होती है। व्यवस्था के इस उपकरण में पुरानी सामंती प्रणाली निर्जीव हो जाती है तथा धन आधारित अर्थव्यवस्था की जड़ें मजबूत हो जाती है जो बाजारों के विकास की गारंटी देती है। सामाजिक सम्बंधों तथा जीवन जीने के तरीकों को सुनिश्चित करने में धन आधारित अर्थव्यवस्था की भूमिका के परिणामों की समीक्षा करना सीमेल के विचारों के केंद्र में रहा। धन से व्यक्तिगत स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है क्योंकि इसने सामाजिक संबंधों को आदान–प्रदान के क्षेत्रों तथा उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्पादनों को विभिन्न वितरकों तक पहुंचाना तथा विक्रेता व खरीददार के बीच सम्बंधों को विकसित करना तथा दोनों को महत्व प्रदान करना तथा चयन की स्वाधीनता प्रदान करना। धन के माध्यम से ही संभव हो सका है। इसके अलावा आर्थिक सहयोगी तलाशने की पूरी स्वतंत्रता के साथ–साथ वस्तुओं को चुनने की

आजादी के कारण आदान–प्रदान की पुरानी प्रथाओं की संकीर्णताएं ध्वस्त हुई हैं। परिणामस्वरूप अपनी रुचि की वस्तुओं का चुनाव करना बहुत सरल हो गया है। उत्पादन के क्षेत्र में भी इस परिवर्तन से चयन की सुविधा बढ़ी है। खपत में वृद्धि हुई है पहले जो उत्पादन की खपत के लिए मालिक पर निर्भरता रहती थी। धन आधारित व्यवस्था में मालिक और मजदूर दोनों से ही पूरी तरह स्वतंत्र बाजार व्यवस्था के विकसित हो जाने से खपत की पूरी आजादी प्राप्त हो गई है। व्यक्तिपरकता के चंगुल से सम्बंधों को बाहर निकाल लाने की धन के क्षमता के कारण धन अब पूरी तरह सार्वजनिक संस्थान के रूप में स्थापित हो गया है।

गतिविधि 1

पांच मित्रों का साक्षात्कार कीजिए। धन के महत्व को साक्षात्कार का विषय बनाइए तथा जीवन में धन के सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक मूल्य पर चर्चा कीजिए।

'धन के सामाजिक महत्व' पर एक निबंध लिखिए तथा अपने अध्ययन केंद्र में अपने साथियों के साथ इस निबंध पर चर्चा कीजिए।

1.4.5 थॉर्स्टीन वैबलेन (1857–1929)

वैबलेन आर्थिक विश्लेषणों को उद्विकास परिदृष्य में संस्थागत आधारों पर पुननिर्मित करना चाहता था। इस अर्थ में संस्थागत अर्थशास्त्र दुर्खीम के प्रतिमान से मेल खाता है। यद्यपि इसके सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ बिल्कुल अलग हैं। वैबलेन ने आर्थिक क्रियाओं के निर्व्यक्तीय सिद्धांत की स्थापना में योगदान दिया था जो ऐतिहासिक अनुभवों से जुड़े अनुसंधान पर आधारित थी। बाजार आधारित उदार पूंजीवाद के सामाजिक प्रभावों वाले अर्थशास्त्र से इसका कोई संबंध नहीं था।

उन्होंने तीन महत्वपूर्ण समस्या क्षेत्रों के तत्वों को प्रस्तुत किया –

i) आर्थिक प्रक्रिया के सिद्धांत में अंतर्निहित भी मानव स्वभाव का व्यक्तिवादी विचार।

ii) पारंपरिक आर्थिक विश्लेषण की स्थिर प्रकृति जिसका ध्यान परिवर्तन की तुलना में समन्वय पर अधिक केन्द्रित रहता है।

iii) व्यक्तिगत रुचि तथा सामूहिक हित के बीच की कड़ी जो सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं से निर्देशित होती है।

ऐतिहासिक परिवर्तन संस्थाओं तथा व्यक्तिगत व्यवहार में आये बदलावों पर आधारित होते हैं। परंपरागत आर्थिक सिद्धांत कार्यों में आयी इस विविधता को अच्छी तरह पकड़ नहीं पाए क्योंकि ये व्यक्तिगत प्राथमिकता तथा प्राण ज्ञान व तकनीक की जानकारी के आधार पर काम करते थे। वैबलेन ने नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र की स्थिर तथा गैर–ऐतिहासिक प्रकृति को रेखांकित किया। उसके अनुसार पारंपरिक दृष्टिकोण समन्वय की प्रवृत्ति से बंधा था जिसका उद्देश्य ऐसे तरीके तलाशना हुआ करता था जिससे अर्थव्यवस्था स्थिर रहे। यह सोच भौतिक विज्ञानों विशेष रूप से यांत्रिकी से प्रभावित थी। वैबलेन के परिवर्तन के सिद्धांत का एक परिणाम समाजों को सह–अस्तित्व की संभावना थी जिसमें प्रौद्योगिकी तथा संस्थानों के बीच सम्बंध भिन्न प्रकार का था। वैबलेन अवश्य भावी संस्थागत परिवर्तन की प्रक्रिया में विश्वास नहीं रखता था जो प्रौद्योगिकी के प्रचार से पैदा हुए प्रभावों के कारण घटित हो रही थीं

तथा एक खास प्रकार के संस्थागत प्रतिमान की स्थापना की ओर ले जा रही थीं जो आर्थिक व सामाजिक वातावरण द्वारा उत्पन्न समस्याओं से प्रभावी ढंग से निपट सकता था। अपनी अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक ''द थ्यौरी ऑफ लेबर क्लास (1899) में वैबलेन ने खपत पद्धति के सांस्कृतिक पक्षों की विवेचना की है। उत्पादों की खपत बढ़ाने की इच्छा लोगों को आर्थिक गतिविधि से जुड़ने के पर्याप्त प्रेरणा नहीं दे पाती। आधुनिक समाज में, जहाँ अर्थव्यवस्था निजी आधिपत्य तथा बाजार द्वारा संचालित होती है, खपत की संभावना व्यक्तिगत स्तर पर उत्पन्न की जाती है क्योंकि यह उद्यमियों की प्रतिष्ठा व सामाजिक सम्मान का आधार होती है। प्रत्यक्ष खपत ने युद्ध के साहस व वीरता का स्थान लिया है जो पूर्व युगों में सामाजिक विशिष्टता के चिन्ह माने जाते थे।

1.4.6 टेलकॉट पार्सनस् (1902–1979) तथा नील स्मैल्सर (1930–)

अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र के बीच सम्बंधों पर अपने पहले लेखों में टेलकॉट पार्सन ने प्रभावशाली नवशास्त्रीय अर्थशास्त्री लिओनेल रोबिन्स के विचारों से सहमत होते हुए अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किये थे। पार्सन का मुख्य तर्क यह था कि समाजशास्त्र आर्थिक जीवन के संस्थानों की विश्लेषण करता है। अतः वह अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा का पूरक तो हो सकता है, उसका विकल्प नहीं हो सकता। पार्सनस् के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की उच्च स्तरीय समस्या का समाधान राजनैतिक क्षमता के पास नहीं है क्योंकि वह निजी रुचियों पर नियंत्रण नहीं कर सकती, न ही लोगों के प्राकृतिक व सहज उद्देश्यों से सरोकार रख सकती है। परन्तु सामूहिक लक्ष्यों तथा साझे मूल्यों तक उसकी पहुँच संभव है। क्योंकि आर्थिक नियम व मान्यताएं भौतिक नियमों व मान्यताओं से भिन्न होते है। अतः उनमें ठोस वास्तविकता को आंशिक रूप से ही समाहित करने की क्षमता होती है। (पार्सनस्, 1934), दूसरे शब्दों में आर्थिक नियम मानक होते हैं, खास स्थितियों में तार्किक क्रियाओं का प्रतीक होते हैं। उनकी अनुभवजन्य वैधता लक्ष्यों की पूर्ति से संबंधित होती है। इस अर्थ में अर्थशास्त्र पार्सन के अनुसार, वास्तविकता से अलग होता है।

पार्सन्स थार्स्टीन वैबलेन के संस्थागत अर्थशास्त्र का घोर विरोधी था। पार्सनस् दो मामलों में संस्थागत अर्थशास्त्र से अपने ऐतराज दर्ज करता है। पहला, संस्थागत अर्थशास्त्र की सिद्धांत विरोधी प्रकृति। सामान्यीकृत उग्र अनुभववाद के नाम पर संस्थागत अर्थशास्त्र विश्लेषणात्मक सार ग्रहण की वैधता से इनकार करता है। दूसरे, प्रौद्योगिकी को संस्थान के रूप में मानने पर जोर देने की प्रवृत्ति तथा सांस्कृतिक मानकों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति (पार्सन्स, 1976–179)।

उसकी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण सीमा थी, लक्ष्यों को शामिल नहीं करना। इसमें लक्ष्यों की जांच–पड़ताल का काम शामिल नहीं है जो निश्चित रूप से व्यक्तिवाद की ओर ले जाता हैं। यह पहले से ही मानकर चला जाता है कि व्यक्ति अपने लक्ष्य स्वतंत्रता पूर्वक आपसी संपर्कों से स्वयं परिभाषित करते हैं। इस बिन्दु पर एक गंभीर समस्या उत्पन्न होती है – यह सोचने के पीछे कोई कारण नहीं होता कि व्यक्तियों के अंतिम लक्ष्य आपसे एक दूसरे से जुड़े होते है। यदि विभिन्न व्यक्तियों के लक्ष्यों के बीच सहयोग एकीकरण के लिए कोई मौजूद नहीं होता तो समाज का खतरा उठाना एक विवाद मात्र बनकर रह जाता है तथा व्यक्तियों के बीच प्रतियोगिता की स्थिति बनी रह जाती है।

अपनी पुस्तक ''द इकॉनोमी एण्ड सोसाइटी'' (1956) में पार्सन्स और स्मेल्सर ने सुझाव दिया है कि समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों को सामाजिक प्रणालियों के सामान्य सिद्धांत के एक हिस्से के रूप में समझा जा सकता है। अर्थव्यवस्था एक सह–प्रणाली है जिसके अन्य तीन सह–प्रणालियों (राजनीति, एकीकृत सह–प्रणाली तथा सांस्कृतिक अभिप्रेरक सह प्रणाली) के साथ अंतर्सम्बन्ध हैं। सह प्रणाली की अवधारणा वेबर के क्षेत्र की धारणा की तरह है जबकि दूसरी का सम्बंध केवल मूल्यों से है, आर्थिक सह प्रणाली अनुकूली कार्य करती है तथा वह क सुस्पष्ट संस्थागत संरचना भी है। अंत में यह कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था तथा समाज दोनों को अर्थशास्त्रियों ने नकारात्मक रूप से स्वीकार किया। इसलिए वे आर्थिक, समाजशास्त्र में समाजशास्त्रियों की रुचि पैदा नहीं कर पाये। अगले दशक में स्मैलर के आर्थिक समाजशास्त्र को संघटित करने का प्रयासों ने आर्थिक समाजशास्त्र को उप–क्षेत्र के रूप में स्थापित किया। अनेक विज्ञानों ने इसे मान्यता संदर्भ की तथा कालेजों तथा विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम में इसे एक विषय के रूप में स्वीकार किया। परन्तु अनुसंधान की नई सूचियों में इसे स्पष्ट रूप से स्वीकृति नहीं दिला पाये। स्मैल्सर ने आर्थिक समाजशास्त्र को व्याख्या सामाजिक संदर्भों के ढांचों, विविधताओं तथा व्याख्या प्रतिमानों के रूप में किया है जिसमें उत्पादन सम्बंधी गतिविधियों की जटिलताएं, विवरण, आदान–प्रदान तथा उत्पादों व सेवाओं की खपत आदि शामिल हैं। आर्थिक प्रायः दो प्रकार के प्रश्न उठाते रहे हैं – पहला है सूक्ष्म तथा आर्थिक गतिविधियों के संदर्भ। आर्थिक समाजशास्त्री पूछते है कि गतिविधियों को भूमिकाओं के रूपों में तथा सामूहिकता में किस प्रकार ढाला जाता है। किन मूल्यों के आधार पर उन्हें वैध ठहराया जाता है। किस मान्यताओं तथा प्रतिबंधों से उन पर नियंत्रण रखा जाता है।

आर्थिक संस्थानों में, जैसे व्यापार निकायों में स्मेल्सर ने स्तर प्रणाली का अध्ययन किया, तथा अधिकरणों के बीच सम्बंधों, विचलनों तथा गुटों तथा गठबंधनों का अध्ययन किया, क्योंकि ये व्यापारिक संस्थानों की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। दूसरे प्रकार का प्रश्न व्यापकता से संबंधित है तथा इसका सरोकार उन सामाजिक अस्थिरताओं से है जो आर्थिक संदर्भों में देखने को मिलती हैं तथा सामाजिक अस्थिरताओं से है जो गैर–आर्थिक संदर्भों में घटित होती रहती हैं। उदाहरण के लिए तरह–तरह के राजनैतिक विवाद विभिन्न समाजों में आर्थिक व्यवस्थाओं द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं तथा अनेक प्रकार की वर्ग प्रणालियाँ विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं में उभर कर सामने आती है।

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक समाजशास्त्र किसे कहते हैं? आठ पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) धन की अर्थव्यवस्था के बारे में सीमेल के क्या विचार है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) स्मेलसर ने आर्थिक समाजशास्त्र को कैसे परिभाषित किया है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 आर्थिक विकास : समस्याएं तथा विरोध

पश्चिमी देशों में आधुनिकीकरण का अभ्युदय हुआ। 1950 के बाद इसने शैक्षणिक तथा नीतिगत तरीके से अपने वर्चस्व का विस्तार करना आरंभ कर दिया। इसके मुख्य सिद्धांत जैसे–जैसे समाज पारंपरिक अवस्थाओं से निकलकर औद्योगिक अवस्था में पहुँचे और विकसित अवस्था में प्राप्त हुए, जिसमें उच्च स्तरीय आर्थिक विकास, व्यापार तथा विदेशी निवेश शामिल है तथा पश्चिमी समाजों की नीतियाँ शामिल है। आधुनिकीकरण की रफ्तार बढ़ती गई। अर्थशास्त्रियों ने औपचारिक प्रतिमान विकसित किए, पूंजी सकलन पर जोर दिया, बचत प्रौद्योगिकी में परिवर्तन औद्योगीकरण पर जोर दिया तथा राज्यों की गतिविधियों को निर्देशित किया। अन्य विषयों में अपनी विषय–वस्तु का चयन किया। समाजशास्त्रियों तथा नृविज्ञानियों ने विकास तथा विशिष्ट संस्थागत परिवर्तनों तथा विकास सम्बंधी बाधाओं, पारंपरिक सांस्कृतिक तथा संरचनात्मक बाधाओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया। साथ ही उन्होंने विशिष्ट संस्थागत परिवर्तनों (स्तरीकरण प्रणालियों, नातेदारी, सामुदायिक तथा धर्म आदि) पर विशेष ध्यान दिया जो विकास के साथ–साथ होते रहते हैं। राजनीति विज्ञानियों ने जनजाति तथा साम्प्रदायिक तथा स्थानीय राजनैतिक प्रणालियों के दलीय, हित समूहों तथा आधुनिक राजनैतिक संस्थानों में बढ़ती रुचियों पर विशेष रूप से ध्यान दिया।

बॉक्स 1.1 आयोजित तथा गैर आयोजित क्षेत्र

अब हम अपना ध्यान औद्योगिक नीति की व्याख्या से हटाकर नगरीय उद्योगों की संरचनात्मक स्वरूपों तथा संगठनों से संबंधित समस्याओं पर केन्द्रित करेंगे।

भारत की नगरीय अर्थव्यवस्था में दो तरह के क्षेत्र आते हैं – औपचारिक क्षेत्र तथा अनौपचारिक क्षेत्र। औपचारिक क्षेत्र में बड़े स्तर पर चलने वाले उद्योग आते हैं, जिनमें बड़ी पूंजी लगी होती है तथा बड़ी संख्या में श्रमिक काम करते है, आधुनिक तथा

विकसित प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होता है और सरकार तथा निजी क्षेत्रों की साझेदारी होती है। श्रमिकों तथा उत्पादों के बारे में सुव्यवस्थित एवं सुरक्षित बाजार होते हैं। रोजगार की प्रकृति औपचारिक होती है तथा प्रशिक्षित एवं सुशिक्षित योग्य कर्मचारियों को काम दिया जाता हैं

दूसरी ओर अनौपचारिक क्षेत्र के उद्योग छोटे स्तर पर चलाये जाते हैं उनमें कम पूंजी लगाई जाती है तथा कम संख्या में कर्मचारी काम करते हैं और निजी अथवा परिवारों की भागीदारी से काम चलाया जाता है। साधारण प्रौद्योगिकी अव्यवस्थित बाजार, असुरक्षित श्रमिक तथा इन्हें चलाना आसान होता है क्योंकि इनमें से अधिकतर उद्योगों के लिये लाइसेंस या रजिस्ट्रेशन भी जरूरी नहीं होते (सत्या राजू, 1989:12–13, अजीज 1984 : 6–8)।

औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को नियमित वेतन दिया जाता है जबकि अनौपचारिक क्षेत्र के उद्योगों में अधिकतर लोगों को नियमित वेतन नहीं दिया जाता, परंतु कुछ कर्मचारी नियमित वेतन भी पाते हैं। उत्पादन तथा मरम्मत, निर्माणकारी, व्यापार, यातायात तथा घरेलू सेवाओं आदि में कर्मचारियों को वेतन दिया जाता है। निजी उद्यमों में स्वरोजगार योजनायें आती हैं जैसे फेरीवाले, पटरी वाले, ठेलागाड़ी चलाने वाले तथा रिक्शा चलाने वाले आदि लोग आते हैं।

भारत में सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देने के लिये प्रमुख रूप से औपचारिक क्षेत्र के उद्यमों पर विशेष ध्यान दिया है। अब हम नं.1 उत्पादन पद्धतियों तथा नं. 2 लघु उद्योगों पर विचार करेंगे।

ईएसओ 12 : भारत में समाज

भारत में आश्रितता का सिद्धांत तथा विश्व प्रणाली सिद्धांत महत्वपूर्ण मिसालों के रूप में सामने आये हैं। 1960 के दशक में आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति की आलोचना होती थी और इसलिए वह तेजी से गति नहीं पकड़ पाई थी। विभिन्न समाजों में सांस्कृतिक कारणों से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को आत्मसात नहीं किया जा पा रहा था। विद्वानों ने इस विचार को चुनौती दी कि पारंपरिक समाजों में स्थिरता होती है तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अपनाई गई तो परम्परायें नष्ट हो जायेंगी। आर्थिक इतिहासकारों तथा अन्य विचारकों ने अभिसरण के विचार की कटु आलोचना की तथा विभिन्न औद्योगिक विकासों की पहचान की। सबसे ज्यादा मौलिक आक्षेप लाटिन अमेरिका तथा बाद में अफ्रीका के विद्वानों की ओर से आया।

1950 के दशक में कुछ लोगों ने यह शिकायत की थी कि आधुनिकीकरण अंतराष्ट्रीय आयामों की उपेक्षा कर रहा है। खासकर विकसित देश अपने पास चारो ओर स्थित विकासशील व पिछड़े देशों की उपेक्षा कर रहे हैं। (प्रैबिश, 1950) यह भावना एक दशक के अंदर बढ़ती गई और यह माना जाने लगा कि विकसित देश आधुनिकता के साथ उपकरण से गैर विकसित देशों पर अपना आधिपत्य बनाये रखना चाहते हैं तथा वे न केवल विकास की गति को अवरूद्ध कर रहे हैं, अपितु कम विकसित देशों से अपने संबंधों को बिगाड़ रहे हैं।

आश्रितता के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विचारकों ने प्रतिस्थापन के आयात पर तथा प्रतियोगिता आधारित औद्योगीकरण पर जोर दिया जिससे निर्भरता की रणनीतियों को भेदते हुए स्वतंत्र अस्तित्व के रास्ते तलाशे जा सकें। आश्रितता के सिद्धांत के अति

उग्र तथा कम उग्र स्वरूप अवतरित हुए और अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक व आर्थिक वर्चस्व वाली समानान्तर वैश्विक प्रणालियों के दबाव के जवाब में मार्क्स व लैनिन जैसे साम्यवादियों से साम्राज्यवाद विरोधी विचारों की प्रतिध्वनियाँ 1960 तथा 1970 के दशकों में सुनाई देने लगी। आश्रितता के सिद्धांत को बुरे वक्त का सामना करना पड़ा कर लेने की प्रवृत्ति से संचालित विकसित देश की रणनीति दबाव बनाने तथा हस्तक्षेप करने की थी। दक्षिण कोरिया, ताइवान, सिंगापुर तथा होंकोंग आदि एशियन देश विकास के प्रतिमानों के रूप में उभरे तथा विकासशील देश व्यापार वित्तीय संदर्भ तथा प्रशासनिक मामलों में विकसित देशों के साथ साझेदारी के लिए उत्सुक दिखे।

1.6 वाशिंगटन सहमति

1980 के आरंभ में विकासात्मक अर्थशास्त्र की आरे से प्रतिक्रांति के स्वर उभरे जो आर्थिक परंपरागत की प्रवृत्ति के परिचायक थे। इसे वाशिंगटन सहमति' के रूप में जाना गया। अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र संस्थान से जुड़े महान विद्वान जॉन विलियम सन ने 'वाशिंगटन सहमति' को प्रस्तावित किया। विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने इसे मान्यता प्रदान की। महान विद्वान फ्रीडरिच हेयक तथा मिल्टन फ्रीडमेन से इसकी निष्पादित हुई थी तथा माग्रेट थैचर और रोनाल्ड रीगन प्रशासनों ने इससे सहमति जताई थी। 1980 के दशक आरंभिक दिनों में उत्पन्न हुए वित्तीय संकट में सबक लेते हुए इस विचार को आगे बढ़ाया गया था। तीसरी दुनिया के देशों को आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से यह विकल्प तैयार किया गया था। सार्वजनिक सूची में राजवित्तीय नियंत्रण द्वारा कमी लाई गई प्रोत्साहन देने के लिए करों में संशोधन किये गये, बाजार आधारित ब्याज दरें निर्धारित की गई व्यापार की शर्तों का उदारीकरण किया गया। लेने–देने की दरों में प्रतियोगिता लाई गई, निजीकरण किया गया, शर्तों व नियमों में ढील दी गई, सम्पत्ति के अधिकारों का संरक्षण किया गया। नव–उदारता की सोच ने मार्क्सवादी विचारों तथा साम्यवादी राजनैतिक प्रणालियों के प्रति झुकाव की प्रवृत्ति को वैकल्पिक आधार प्रदान किया। सबसे पहले पूर्वी यूरोप में, फिर पश्चिमी यूरोप में फिर संयुक्त राज्य अमेरिका में साम्यवाद के प्रति बढ़ते रूझानों को रोकने के वैकल्पिक प्रयास किये गए। 1989–90 में इन वामपंथी प्रणालियों के ध्वस्त होने से पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलने लगा। पश्चिमी पूंजीवादी विचारधारा थी धुर विरोधी साम्यवादी विचारधारा के तिरोहित हो जाने से पश्चिमी पूंजीवादी सोच व्यापक रूप से स्थान पा गई। अब पश्चिमी अर्थशास्त्री तथा नीति निर्धारक इन क्षेत्रों में पूंजीवादी विकास को बढ़ावा देने के लिए तेजी से आगे आए। अब तक वैश्वीकरण का दौर शुरू हो चुका था, उसके सहयोग से पूंजीवाद बिना वैचारिक तथा राजनैतिक चुनौतियों पूंजीवाद पूरी दुनिया में छा गया (कुर्थ, 2001)। वाशिंगटन सहमति को रेखांकित करते हुए सब शास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत सभी अर्थ व्यवस्था में अपने लिए स्थान बनाने लगा। इसके लिए किसी बड़े परिवर्तन की अथवा प्रयास की जरूरत नहीं थी। तर्कसंगतता, प्रोत्साहन, शिथिलता तथा निजीकरण तथा राज्य–विरोधी होने पर दंडविधान जो बाजार व्यवस्था बिना किसी व्यवधान के पूरा कर सकती है। आर्थिक नीतियां नव–उदारवाद के साथ मिलकर संरचनात्मक समायोजन नीतियां (एसएपी) का निर्माण करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना ऋण लेने वाले देशों पर नियंत्रण रखने के लिए ऋणवापसी की शर्तें तय करने आदि कार्यों को केंद्र में रखकर की गई थी। 1980 में जब भारत आर्थिक कठिनाइयों से जूझ रहा था और उसे आर्थिक सहयोग की आवश्यकता थी, तब एसएपी के अंतर्गत भारत से विदेशी आर्थिक सहयोग

प्राप्त किया था। ऋण लेने वाले देशों को जो सुझाव दिये जाते हैं, उनमें सरकारी खर्चा में कमी करना, अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेपों को सीमित करना, व्यापार की नीतियों को उदार बनाना, आदि शामिल था। व्यवहार में ऐसी अनेक नीतियां दंडात्मक थीं। वेतन रोकना, मुद्रा की कीमत कम करना, श्रम कानून लागू करने, तथा मजदूर यूनियन को काम करने से रोकना तथा मजदूर वर्ग को सामूहिक रूप से संगठित होने से रोकना आदि स्थितियों में इन नीतियों का उपयोग किया जाता था।

बोध प्रश्न 3

1) 'वाशिंगटन सहमति' से आपका क्या अभिप्राय है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने समाजशास्त्र के सहयोगी विषय के रूप में आर्थिक समाजशास्त्र के विकास पर प्रकाश डाला। आर्थिक समाजशास्त्र के विकास पर प्रकाश डाला। आर्थिक समाजशास्त्र के आरंभिक वर्षों में मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, सीमेल तथा वेबलेन के आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर समाजशास्त्र के उत्पादन सम्बंधों पहलुओं पर विचार किया गया। यद्यपि आर्थिक जीवन की व्याख्या सामाजिक संरचना के आधार पर की गई जिसमें अर्थशास्त्र की विशेष भूमिका दिखाई पड़ती है। जेम्स ड्यूसेनबरी का यह कथन – ''जब अर्थशास्त्र लोगों की पसंदों पर छाया रहता है, तो लोग अपनी प्राथमिकता कैसे तय कर सकते हैं, जब समाजशास्त्र छाया रहता है, तब लोग अपनी पसंद का स्पष्टीकरण क्यों नहीं करते। इसका खुलासा उच्च स्तरीय सैद्धांतिक वाद–विवादों द्वारा दोनों विषयों अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के बारे में की गई है। इन उच्च स्तरीय सिद्धांतकारों के प्रयासों के बावजूद आर्थिक समाजशास्त्र को अनुभवों पर आधारित नई दिशाओं में प्रसार के लिए 1950 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। इससे पहले अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र को एक दूसरे का पूरक माना जाता था। समाजशास्त्री अब अर्थशास्त्र की सीमाओं का उल्लंघन करने का हौंसला दिखा रहे हैं तथा अर्थशास्त्रियों के क्षेत्र पर महत्वपूर्ण सवाल खड़े कर रहे हैं।

1.8 संदर्भ

'द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' ऐमाइल दुर्खीम, 1964 : न्यूयार्कः फ्री प्रैस।

केपिटल : ए क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनोमी – कार्ल मार्क्स, 1967 : न्यूयार्क : इंटरनेशनल पब्लिशर्स।

'इकॉनोमी एण्ड सोसाइटी : 'ए स्टडी इन द इंटरेक्शन ऑफ इकॉनोमिक एण्ड सोशल थ्यौरी –टेलकॉट पारसन्स एण्ड नील स्मैल्सर, 1956 : न्यूयार्कः फ्री प्रैस।

द फिलॉसफी ऑफ मनी – जॉर्ज सीमेल, 1990 – लंदनः रूटलैज।

द प्रोस्टेंट एथिक एण्ड द स्प्रिट ऑफ केपिटलिज्म – मेक्स वेबर, 1976 – चार्ल्स स्क्रिबनर्स सन्स, न्यूयार्क।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों एक दूसरे के सहयोगी तथा संपूरक हैं जिनका कार्यक्षेत्र समाज है। आपस में प्रतियोगिता नहीं हैं ये एक दूसरे के स्थानापन्न भी नहीं हैं।

2) उच्च स्तरीय विचारक ऐमाइल दुर्खीम सामाजिक सत्यों का तथा सामूहिक चेतना के पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन करते हैं। ऐमाइल दुर्खीम के रुचि आधुनिक समाजों तथा सामाजिक अखंडता व समाजों के जटिल समाजों में परिवर्तित होने की प्रक्रियाओं के अध्ययन में थी।

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक समाजशास्त्र एक ऐसा क्षेत्र है तथा अनुसंधान का विषय है जिसका प्रयास मनुष्य के सामाजिक व्यवहार तथा समाज के आर्थिक व सांस्कृतिक पहलुओं के बीच सम्बंधों की स्थापना करना होता है। समाज विज्ञानी एडम स्मिथ व अन्य शुद्ध अर्थशास्त्रियों के विपरीत विश्वास रखते थे कि सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भों के अंतर्गत ही व्यक्ति काम करते हैं। इसीलिए उनके सामाजिक कार्य विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में अलग–अलग होते हैं।

2) सीमेल ने अपनी पुस्तक 'द फिलॉस्फी ऑफ मनी' (1900) में विश्वास व्यक्त किया है कि समकालीन पूंजीवादी समाजों में धन एक बड़ा संस्थान है। आधुनिक समाजों के लोगों के जीवन में धन का विशेष महत्व है। समाजों में धन का संस्थान लोगों को धन एकत्रित करने विश्वास तथा स्थिरता की स्थिति में विभिन्न सांस्कृतियों वाले समाजों में संस्थान की तरह धन का निवेश करने तथा उसका आदान–प्रदान करने की शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार यह एक सार्वजनिक संस्थान बन जाता है।

3) सीमेल आर्थिक समाजशास्त्र की व्याख्या संदर्भों के स्वरूप तथा वितरण तथा आदान–प्रदान तथा वस्तुओं तथा सेवाओं की खपत से सम्बंधित होती है।

बोध प्रश्न 3

1) 'वाशिंगटन कंसेंसस' का अर्थ है 1980 के प्रतिक्रांति का उदय जो 1980 के दशक के आरंभिक दौर में विकासात्मक अर्थशास्त्र के संदर्भ में अस्तित्व में आई। इसे वाशिंगटन कंसेंसस' की संज्ञा इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनेशनल इकॉनॉमी से जुड़े महान विद्वान जॉन विलिंगसन ने दी थी तथा 'विश्व बैंक' व 'अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष' ने इसे मान्यता प्रदान की थी और लागू किया था।

इकाई 2 औपचारिकतावाद तथा तात्विकवाद*

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आर्थिक नृविज्ञान / समाजशास्त्र : विचारधाराएँ

2.2.1 औपचारिकतावाद

2.2.1.1 पूर्व औद्योगिक तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्थायें

2.2.1.2 कार्ल पोलान्नयी तथा स्वविनियमित बाजार

2.2.2 तात्विकवाद

2.2.2.1 अंतर्निहितता तथा तात्विक अर्थशास्त्र

2.2.2.2 पारस्परिकता, पुनर्वितरण तथा आदान–प्रदान

2.3 भारत में दान धर्म : मार्सेल मौस द्वारा उपहार आदान–प्रदान का एक अध्ययन

2.3.1 उपहारों के आदान–प्रदान की आलोचना

2.4 सारांश

2.5 संदर्भ

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ सकेंगे :–

- अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के अर्थ तथा प्रकृति की व्याख्या;
- औपचारिकतावाद तथा तात्विकवाद से संबंधित दो विचारधाराओं की व्याख्या;
- औपचारिक आधुनिक अर्थशास्त्र तथा इसके समर्थक;
- तात्विकवादी विचार धारा से जुड़े विद्वानों के प्रमुख विचार – जैसे कार्ल पोलान्नयी; और
- मार्सेल मौस के उपहार आदान–प्रदान सिद्धांत की समीक्षा।

2.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में समाज, संस्कृति और अर्थशास्त्र में आपने समाज, संस्कृति तथा अर्थशास्त्र के बीच सम्बंधों तथा शास्त्रीय व नवशास्त्रीय विचारकों के विचारों में अंतरों के बारे में पढ़ा। यह इकाई आपको पूंजीवादी प्रणाली की सार्वभौमिकता तथा प्रकृतिकता के बारे में बताया जायेगा। आर्थिक नृविज्ञान तथा समाजशास्त्र के अनुयायी के बीच बहस रही है। यह इकाई आपको औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावादी विचारधाराओं के बीच छिड़ी बहस के बारे में जानकारी दी जायेगी।

* डॉ. कुसुम लता द्वारा लिखित।

2.2 आर्थिक नृविज्ञान/समाजशास्त्र : विचारधाराएँ

औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद – ये दोनों आर्थिक नृविज्ञान की दो विचार धाराएँ हैं। 1950 के मध्य में इन दो धाराओं का अस्तित्व सामने आया था। औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद के बीच अंतर की स्थापना हंगरी के आर्थिक एवं इतिहास मर्मज्ञ कार्ल पोलन्नयी ने किया था। इससे पहले जर्मनी के समाजशास्त्री मैक्स वेबर औपचारिकता तथा तात्विकता की तर्कसंगतता पर सवाल उठा चुके थे। कार्ल कोलान्नयी ने तर्क दिया था कि अर्थव्यवस्था की व्याख्या दो शब्दावलियों के माध्यम से की जा सकती है – एक है औपचारिक, दूसरा है तात्विक। इस विश्लेषण से आर्थिक नृविज्ञान और समाजशास्त्र में दो विचारधाराओं का जन्म हुआ, ये विचारधारायें तात्विक तथा औपचारिक कहलाई। इनका अतिस्तत्व दो पद्धति परक विवादों के आधार पर हुआ था। औपचारिकतावाद निगमनात्मक तथा अनुभवात्मक सोच पर आधारित है, जबकि तात्विकतावाद वर्णनात्मक तथा अनुभवात्मक सोच पर आधारित है। औपचारिकतावाद का मूल बहुसंख्यक लोगों की आर्थिक तर्कसंगतता के विचार पर आधारित है। जबकि तात्विकतावाद के बारे में कार्ल पोलन्नयी सहित अनेक विचारकों का मत है कि अर्थव्यवस्था सामाजिक तथा सांस्कृतिक संबंधों पर आधारित होती है। पोलन्नयी के विचारों ने आर्थिक नृविज्ञान में नई विचारधारा को जन्म दिया, जिसे उपस्तंभवादी उन्मुखता कहा जाता है। इस विचार धारा के समर्थकों में पॉल वोहानन, पेड्रो कैरास्को, लुइस डूमॉन्ट, टीमोथी अर्ले, मॉरिस गोडलियर, क्लोड मीलेसॉक्स, जॉन मूरा, मार्शल साहलिन्स, रोडा हैलप्रिन, एरिक वुल्फ तथा जॉर्जडॉल्टन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नीचे दिये गये खण्ड में हम औपचारिक तथा तात्विक अर्थव्यवस्थाओं की विस्तार से व्याख्या करेंगे –

2.2.1 औपचारिकतावाद

औपचारिकतावाद पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों से जुड़ा है। जो स्पष्ट रूप से पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं से बिल्कुल अलग है। इसका अर्थ यह भी है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किये जाते हैं। जिसके कारण गैर औद्योगिक अर्थव्यवस्थायें बाजार अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के अधीन आ जाती हैं। औपचारिकतावादी सिद्धांतकार यह तर्क देते हैं कि नवशास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत के औपचारिक नियम मुख्य रूप से पूंजीवादी बाजार से जुड़े समाजों के अध्ययन से लिये गये हैं। इन्हें गैर पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति तथा उनकी गतिशीलता की व्याख्या करने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध औपचारिकतावादी अमेरिकन नृविज्ञानी 'मैलविले हर्सकोटिक्स' ने अपनी पुस्तक 'द इकोनॉमिक लाइफ ऑफ प्रीमिटिव प्यूपिल' में इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है। उसने लिखा है कि विरलपन और बहुमतता का अस्तित्व सार्वत्रिक रूप से स्वीकार किया जाता है। अलग–अलग उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हर जगह यह दोनों ही माध्यम प्रयोग में लाए जाते हैं। नीचे औपचारिकतावादी विशेषता की व्याख्या की जायेगी।

2.2.1.1 पूर्व औद्योगिक तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्थायें

कार्ल पोलन्नयी ने अपनी प्रभावशाली पुस्तक – 'द ग्रेट ट्रांसफॉर्मेशन' में लिखा है कि ऐसे सैद्धांतिक मानदंडों की उत्पत्ति यूरोप की पूर्व औद्योगिक दुनिया के औद्योगिक दुनिया में बदल जाने के कारण हुई है। औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पादन के

तरीकों तथा विचारों, विचारधाराओं, सामाजिक तथा आर्थिक नीतियों में भारी बदलाव आया। अपनी पुस्तक 'द ग्रेट ट्रांसफोर्मेशन' में कार्ल पोलेन्नयी ने 19वीं शताब्दी के आरंभिक दौर में ब्रिटेन तथा शेष औद्योगिक जगत में बाजारवादी अर्थव्यवस्था के परिणामों का विश्लेषण किया है। उसके अनुसार बाजारवादी पूंजीवाद ने सभी उत्पादों तथा सेवाओं को एकल स्तरीय पैसे के इर्द–गिर्द वस्तुकृत तथा व्यवसायकृत कर दिया है। जबकि पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में धन केंद्रितता तथा वस्तु केंद्रितता का अस्तित्व नहीं था बल्कि पूरी व्यवस्था सामाजिक संबंधों पर आधारित थी इसका अर्थ यह नहीं है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में बाजार नहीं थे। पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में बाजार थे, परंतु अर्थव्यवस्था बाजार के नियमों से संचालित नहीं थी। परंतु आपूर्ति का दवाब नहीं था। इस्तेमाल किये जाने वाली चीजों के अलावा बाजार पूंजीवाद श्रमिकों का भी वस्तुकरण कर देता है। पोलेन्यी के अनुसार पूंजीवाद लाभ के कद को बढ़ा देता है और बाजार समाज तथा जीवन मूल्यों पर हावी हो जाता है। हर चीज का (जमीन तथा श्रम) वस्तुकरण करते हुआ हर चीज बेची, या खरीदी जा सकती है। पोलेन्यी के अनुसार बाजार आधारित अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो केवल और केवल बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में बाजार पूंजीवाद की नौकर हो जाती है और वह व्यवस्था का एक ऐसा हिस्सा बन कर रह जाती है जो पूंजीवाद को सहज स्वीकार्य साबित करने में लगी रहती है। पोलन्नयी ने बाजार पूंजीवाद के अलावा अन्य संबंधित चीजों का अध्ययन करने के लिये पूर्वकालिक साम्राज्यों का अध्ययन भी किया।

2.2.1.2 कार्ल पोलन्नयी तथा स्व–नियंत्रित बाजार

पोलेन्नयी तर्क देता है कि 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने ऐसे विचारकों को जन्म दिया जिन्होंने बाजार–उदारवाद का विकास किया, इस विश्वास के साथ कि सभी अर्थव्यवस्थायें स्व–नियंत्रित बाजारों के अधीन हों। उदाहरण के लिए एडम स्मिथ जिन्हें शास्त्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था का जनक माना जाता है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया था कि बाजारों को नियंत्रित करने में मांग और पूर्ति के नियम अदृश्य हाथों की तरह काम करेंगे। 'दुनिया की कार्यशाला' में ब्रिटेन का नेतृत्व होने के साथ–साथ स्व नियंत्रित बाजार अथवा स्वतंत्र बाजार, बाजारों की परिकल्पना विश्व अर्थव्यवस्था का प्रमुख सिद्धांत बन गई।

पोलेन्नयी ने स्व–नियंत्रित बाजारों के केंद्रीय सिद्धांत को नकार दिया था। उनका तर्क था कि स्व–नियंत्रित बाजारों की परिकल्पना जमीनी नहीं है क्योंकि इसमें अंदरूनी घटनाक्रमों को संयमित रखने की क्षमता का अभाव है तथा सरकारी हस्तक्षेप को अनिवार्यता की संभावना निहित है। स्वतंत्र या स्वचालित बाजारों की बातें इसलिए चर्चा में है क्योंकि पूंजीवादियों के इसमें निहित स्वार्थ हैं। स्वतंत्र या स्वचालित या आत्मनिर्भर बाजार का मतलब है बाजार–व्यवस्था में पूंजीवाद का पूरा–पूरा दखल। इस तरह तो बाजारों के स्वतंत्र अस्तित्व का मिथक ही खत्म हो जाता है। यही तो औपचारिक अर्थव्यवस्थाओं का प्रमुख विचार है।

बाक्स 2.0

क्या आप जानते हैं 1930 में आई मंदी संयुक्त राज्य अमेरिका में स्टॉक मार्केट के ध्वस्त हो जाने के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई थी। इससे बाजारों के स्वतंत्र अस्तित्व का तिलिस्म भी पूरी तरह टूट गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार पर दबाव बनाया गया था कि वह हस्तक्षेप करे। 1933 से 1945 तक के अंतराल में

फ्रेंकलिन रूजवैल्ट अमेरिका के राष्ट्रपति थे। उन्होंने अर्थव्यवस्था को संकट से उबारने के लिए सरकार को अधिक से अधिक खर्च करने का सुझाव दिया था।

1932 के अपने एक भाषण में स्वतंत्र बाजारों वाली अर्थव्यवस्था की उन्होंने कटु आलोचना की थी। उन्होंने कहा था – ''जो आदमी आपसे यह कहता है कि उसे व्यापार से सरकारी हस्तक्षेप नहीं चाहिए, वही स्वयं बाजार में दखल देना चाहता है। ऐसा कहने के पीछे उसके अनेक निहित स्वार्थ हैं। वह स्वयं वाशिंगटन पहुंचकर सरकार से संपर्क साधाता है और कहता है कि उसे सरकार से लाभकारी मूल्य अपने उत्पादों को बेचने की आजादी या अनुमति चाहिए। जब चीजें बुरी तरह बिगड़ जाती हैं, जैसेकि दो वर्ष पहले बिगड़ी तब वह बड़ी फुर्ती से संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार के पास जाता है और कहता है कि उसे आसान शर्तों पर ऋण चाहिए। वित्तीय परिषद की पुनर्संरचना इसी का परिणाम है। हर समूह ने अपने स्वार्थों के लिए सरकारी संरक्षण की मांग की है। यह महसूस किये बिना कि सरकार का काम किसी समूह विशेष के पक्ष में फैसले लेना नहीं है। सरकार का कर्तव्य है व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों तथा सभी नागरिकों की निजी सम्पत्ति की रक्षा करना।''

इससे यह साबित होता है कि शास्त्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था के धर्म के ठीक विपरीत बाजार के स्वतंत्र अस्तित्व वाली अर्थव्यवस्था जानबूझकर की गयी सामाजिक क्रिया का प्रतिफल है जैसा कि पोलेन्नयी ने लिखा है – ''स्वतंत्र बाजार की योजना तो बनाई गई थीं, परंतु वह सुनियोजित नहीं थी'' (के. पोलेनी, 1957) (द ग्रेट ट्रांस्फोर्मेशन द पॉलिटीकल एण्ड इकॉनोमिक ऑरिजिन्स ऑफ अवर टाइम, बीकन प्रेस, वोस्टन : 141)।

औपचारिक अर्थव्यवस्था या पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जो स्व नियंत्रित तंत्र की बात करती है, वह इस विचार की समर्थक है कि मनुष्य के व्यवहार के केंद्र में अधिक से अधिक मुनाफा कमाना होता है, इसे स्वार्थ आधारित सम्बंध या आर्थिक सामर्थ्य केंद्रित संबंध कहा जाता है। इसके लिए व्यक्ति या तो दुर्लभ आर्थिक सामर्थ्य को चुनता है या पसंदीदा आर्थिक सामर्थ्य को चयन का आधार बनने वाले नियमों को तर्कसंगत कहा जाता है जो औपचारिक अर्थव्यवस्था का एक और प्रमुख पहलू है। औपचारिक अर्थव्यवस्था में तर्कसंगत कार्य को आपकी रुचि के अनुसार आपका अपना फैसला माना जाता है। साधन ही साध्य तक ले जाते हैं, चाहे प्रकृति के नियमों की गुणवत्ता के कारण या कार्य के नियमों की गुणवत्ता के कारण। अर्थव्यवस्था का यह औपचारिक अर्थ 'आर्थिक सामर्थ्य केंद्रित सम्बंध' की तर्क–संगत विशेषता से लिया गया है। 'आर्थिक' तथा 'आर्थिकीकरण' जैसे शब्दों में यह अर्थ ध्वनित है यह चयन की स्वतंत्रता का प्रतीक है। साधनों के विविध उपयोगों के बीच से साधनों की अपर्याप्त क्षमताओं का संदेश मिलता है। पोलेनी के लिए चयन की स्वतंत्रता आशय सदैव साधनों की कमी से नहीं है (पोलेनी, 1977; 25)। वास्तव में समाजों में पर्याप्त व विविध स्रोतों में से अपनी पसंद के स्रोत को चुनने की प्रवृत्ति तीव्रता से उत्पन्न हुई है। पोलेनी ने लिखा है – ''यदि साधनों में विविधता की कमी है तो चयन की प्रक्रिया और भी अधिक धारदार होती जायेगी।'' (फिर वही; 1977)।

पोलेनी के अनुसार नवशास्त्रीय अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य औपचारिक परिप्रेक्ष्य से मानव समाज को अर्थव्यवस्था तथा मानव इतिहास को समझ पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि प्रजाति अर्थशास्त्र को बाजार परिप्रेक्ष्य तक सीमित कर देने से मनुष्य के इतिहास का बड़ा हिस्सा दृश्य से बाहर हो जायेगा (पोलेनी, 1977 पृ. 6)।

बॉक्स 2.1

अर्थशास्त्रीय नृविज्ञान की तात्विकतावादी विचारधारा (इसका प्रमुख प्रतिपादक पोलेनी का छात्र जार्ज डाल्टन था) के मूल में अनुभववादी विचारधारा थी। समाज में चीजों का वितरण किस प्रकार हो रहा है, इसका निरीक्षण करने के बाद ही मनुष्य इसके सिद्धांतों को समझ पाता है। नये प्रकार के आदान–प्रदान तथा वितरण को देखने के बाद यह निष्कर्ष निकला कि सभी आदान–प्रदान व वितरण आर्थिक अधिक समीकरण के सिद्धांतानुसार नहीं हो रहे थे। आदान–प्रदान की अर्थव्यवस्था से नृविज्ञानी पूरी तरह अवगत थे। इसमें पुनर्वितरणात्मक अर्थव्यवस्था की धारणा अंतर्निहित थी। बंदरगाहों के जरिए व्यापार के नियमों के तहत विभिन्न देशों के लोग पहले से ही निर्धारित मूल्यों के आधार पर आदान–प्रदान किया करते थे। (पृ. 11)

तात्विकतावादियों की चुनौती का जवाब स्वघोषित औपचारिकतावादियों ने दिया। औपचारिकतावादियों ने यह दावा किया कि पोलेनी अर्थशास्त्र को ठीक से समझ ही नहीं पाया। अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था की मौजूदगी या गैर–मौजूदगी पर निर्भर नहीं करता। अर्थशास्त्र का सरोकार मनुष्य के विशिष्ट व्यवहार से होता है। लोग अब बाजार में खरीदारी करते है तब उनका पूरा प्रयास होता है कि अच्छी से अच्छी चीज खरीदें और वह भी इस शर्त के साथ कि जितना पैसा उन्होंने खर्च किया है चीज की गुणवत्ता अपेक्षाकृत बेहतर है या नहीं। समाजशास्त्र का उद्देश्य विभिन्न सामाजिक प्रणालियों के बीच तुलना करना नहीं है। परन्तु यह पता लगाना है कि कौन सी प्रणाली मनुष्य को उस तरह करने में सहयोगी है, जैसा वे करना चाहते है।

तात्विकवाद किसी चीज को स्पष्ट नहीं करते, वे केवल यह बताने का प्रयास करते है कि वे अलग श्रेणी में आते हैं। वे एक विस्तृत सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं जो दुर्खीम के प्रकार्यवाद का संस्करण लगता है जिसमें अर्थशास्त्री समाज के स्वरूप को व्यक्तियों के निजी फेसलों का परिणाम मानते हैं। प्रकार्यवादियों के अनुसार समाज अपने अधिकारों के लिये सक्रिय होता है और हर हालत में उसकी चेतना में यह बात प्रबल हो जाती है कि उसे अपना अधिकार प्राप्त करना है जबकि यह प्रवृत्ति मनुष्य को नितांत स्वार्थी बना देती है और उसका व्यवहार जानवरों जैसा हो जाता है।

दुर्खीम के अनुयायियों के लिये आर्थिक संस्थायें सामाजिक एकीकरण के माध्यम होते है। समाज एक नैतिक प्रकार तैयार करता हैं जिससे लोग बहा जाते है। यदि लोगों में नैतिकता हो जाय तो वे दायित्वहीन तथा भावनाहीन मानव समूह मात्र हो और यदि ऐसा नहीं होगा तो समाज में मनुष्यों के जीवन का उद्देश्य संसाधन इकट्ठे करना मात्र रह जायेगा। स्पष्ट प्रश्न यह है कि समाज लोगों को किस तरह प्रोत्साहित करता है। मनुष्यों को प्रोत्साहित करने वाले घटक न रहें तो मनुष्य केवल उन रीति–रिवाजों और उन नियमों पर आंख बंद करके चलता हुआ दिखेगा जो समाज उसके लिये बनायेगा। ऐसे में सामाजिक परिवर्तन की संभावना नहीं रह जायेगी। (पृ. 12)

यद्यपि अब औपचारिकतावादियों तथा तात्विकतावादियों के बीच छिड़ी बहस बीते दिनों की बात हो चुकी है, फिर भी समस्याएँ तो अब भी मौजूद हैं। परन्तु एक बात है, जो समाज को एक सम्पूर्ण इकाई मानते हैं, जैसा कि तात्विकतावादी, वे यह समझाने की कोशिश करते हैं कि लोग समाज का निर्माण करने के लिये किस प्रकार प्रोत्साहित होते हैं, समाज का क्या महत्व है, दूसरी ओर वे लोग जो समाज के स्थान पर व्यक्तिगत इच्छाओं को केंद्र में रखकर सोचते हैं वे औपचारिकतावादी कहलाते हैं।

औपचारिकतावादी यह बात समझाने में असमर्थ हैं कि लोग कुछ चीजों को महत्व क्यों देते हैं, तथा अन्य चीजों को महत्व क्यों नहीं देते। (पृ. 12)

2.2.2 तात्विकतावाद

पोलेनी कहता है कि आर्थिक तर्कसंगतता की अवधारणा एक अतिविशिष्ट ऐतिहासिक संरचना है जो बाजारवादी समाज पर मुख्य रूप से लागू होती है। इस विचारधारा का जन्म पूर्व आधुनिककाल में पश्चिमी यूरोप में हुआ था। इस प्रकार पोलेनी उसे सामाजिक रूप से प्रोत्साहित व्यवहार मानता है – एक ऐसा व्यवहार जिसमें परिवार, कुल तथा गांव आदि के हित सन्निहित हैं – यह कोई अपने स्वार्थ पर केंद्रित व्यवहार नहीं है, जो मनुष्यों में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। तर्कसंगत निजी स्वार्थ अतिविशिष्ट समाज की विशेषता होती है। इसे बाजार मूलक समाज कहते हैं।

आर्थिक तर्कसंगतता के स्थान पर तथा बाजार प्रक्रिया जो पूर्व–बाजार अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित रूप दे रहा है, के स्थान पर पोलेनी यह तर्क देता है कि संगठन की साहचर्य पद्धतियाँ पारम्परिक समाजों की श्रेणी में मौजूद हैं। पोलेनी विश्वास दिलाता है कि इतिहास और मानव जाति विज्ञान मौलिक अर्थशास्त्र तथा सामाजिक संस्थानों की विविध कोष प्रदान करता है। बाजार से जुड़े संस्थान ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट हैं और वे अपने आप में देश–काल सम्बंधी पर्याप्त विविधताएँ समेटे हुए हैं। व्यापार, कारीगरी, शिल्प, वस्तुएँ व बाजार के लिए उत्पादन ऐसी गतिविधियां हैं जिनके जड़े प्राचीन मानव समाज में मौजूद हैं। इस प्रकार के आर्थिक आदान–प्रदान के उल्लेख प्राचीनकालीन चीन, यूरोप तथा अमेरिका में पाये जाते हैं। हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि सामान्य मानवीय व्यवहार में तथा अंतःक्रियाओं में बार–बार दिखाई पड़ते हैं। इसलिए बाजार कोई ऐसी विशेष ऐतिहासिक सृष्टि नहीं है जैसी पोलेनी बताता है। फिर भी बाजार संस्थान (जैसा कि मार्क्स और वेबर दोनों कहते हैं) उपयोगिता के इर्द गिर्द विकसित हुए हैं या संग्रह, खपत अथवा लाभ के इर्द–गिर्द अस्तित्व में आए हैं। पोलेनी इस बात से सहमत नहीं है कि अधिकतर मानव मौलिक अभिप्रेरण निजी रुचियों की तर्क संगतता पर आधारित होते हैं। इसके ठीक विपरीत पोलेनी कहता है कि व्यक्तियों का सामाजिक मनोविज्ञान अपने आप में एक विशिष्ट ऐतिहासिक उत्पत्ति है। यह मनुष्य की प्रकृति की सदा बने रहने वाली विशेषता नहीं है। वास्तव में पोलेनी एक कदम और आगे बढ़ जाता है और तर्क देता है कि मनुष्यों के व्यवहार को प्रभावित करने में सामाजिक अभिप्रेरण निजी रुचियों की तर्क संगतता की तुलना में अधिक मौलिक होते हैं।''।

अपनी तात्विकतावादी अर्थव्यवस्था के समर्थन में अंतर्निहितता की धारणा का इस्तेमाल करता है। उसके अनुसार अंतर्निहितता का सामाजिक विचार में प्रमुख योगदान होता है। उसकी असक्ति की अवधारणा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की कटु आलोचना करती है जो समाज और अर्थव्यवस्था दो अलग–अलग क्षेत्र मानती है जिनका एक दूसरे से कोई संबंध नहीं होता।

पोलेनी इस बात पर जोर देता है कि आधुनिक, आर्थिक, विचार की पूरी परंपरा अथवा औपचारिक अर्थव्यवस्था बाजारों पर आधारित है जो मांग और पूर्ति पर आधारित मूल्य तंत्र पर चलती है। जब अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि कभी–कभी बाजार प्रणाली को बाजारों के घाटे में चले जाने की स्थिति में सरकार से सहायता की आवश्यकता पड़ जाती है। इस अवस्था में भी वे एकीकृत बाजारों की अर्थव्यवस्था की

संतुलन प्रणाली पर निर्भर करते हैं। अपनी पुस्तक 'द ग्रेट ट्रांसफॉर्मेशन' में स्व नियंत्रित बाजारों की व्याख्या करते समय पोलेनी कहता है कि कोई समाज किसी न किसी प्रकार की अर्थव्यवस्था के आधार पर ही जीवित रहता है। परंतु अब से पहले कोई ऐसी अर्थव्यवस्था मौजूद नहीं थी जिसे बाजारों द्वारा नियंत्रित किया जाता हो, जब कि पूंजीवादी समाज यह मानकर चलते हैं कि अर्थव्यवस्थायें बाजारों द्वारा नियंत्रित होती है। मानव अर्थव्यवस्था में आधुनिक दौर से पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि आदान–प्रदान के मूल में लाभ अथवा प्राप्ति रहा हो। यद्यपि बाजार नामक संस्थान पाषाण युग के उत्तरार्ध से सामान्यतः चलन में था परन्तु इसकी भूमिका आर्थिक जीवन में घटनात्मक से ज्यादा नहीं थी।

2.2.2.1 अंतर्निहितता और तात्विकता अर्थशास्त्र

पोलेनी का आशय यह दिखाना है कि यह अवधारणा किस प्रकार मानव समाज की वास्तविकता, जो मानव इतिहास विवरण है, से किस तरह नितांत भिन्न है। 19वीं शताब्दी से पहले अर्थव्यवस्था समाज आधारित हुआ करती थी जिसे वह तात्विकतावादी अर्थव्यवस्था कहता है। मानव अर्थव्यवस्था आर्थिक अथवा गैर आर्थिक संस्थानों पर आधारित होती है। गैर आर्थिक घटकों का समावेश व्यापक है (जैसे धर्म) पोलेनी यह कहना चाहता है कि किस तरह एक खास समय में कुछ लोगों ने सांस्कृतिक संस्थानों को बुरी तरह मिला–जुला कर रख दिया है।

पोलेनी ने अर्थव्यवस्थाओं की संस्थान अंतर्निहितता तथा सामाजिक आधारितता पर विशेष रूप से जोर दिया है। उसने अर्थव्यवस्था को तात्विक आधार प्रदान किया है। जो मनुष्य तथा उसके पर्यावरण के साथ अंतर्संबंधों की प्रक्रिया से सीधी जुड़ी है और जिसका उद्देश्य आवश्यकताओं की भौतिक आपूर्तियों की सततता को बनाये रखना रहा है। उसने आगे कहा है कि मानव अर्थव्यवस्था संस्थानों पर आधारित है तथा संस्थानों के साथ पूरी तरह लिपटी हुई है। चाहे वे संस्थान आर्थिक हों अथवा गैर आर्थिक गैर आर्थिक क्षेत्र का भी मानव जीवन में व्यापक समावेश होता है – जैसे धर्म अथवा सरकार इनका अर्थव्यवस्था को स्वरूप प्रदान करने तथा उसका संचालन मुद्रा आधारित संस्थानों के रूप में करने अथवा उपकरणों और मशीनों को उसमें शामिल करते हुए करने में ही जिसमें श्रमिकों की आवश्यकता कम हो जाती है, परंतु इनका अपना महत्वपूर्ण योगदान है।

अंतर्निहितता शब्द यह विचार अभिव्यक्त करता है कि अर्थव्यवस्था समाज से अलग कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जैसा कि तथाकथित शास्त्रीय अर्थशास्त्र कर्ता हमें समझाना चाहते हैं। अर्थव्यवस्था सदैव राजनीति, धर्म तथा सामाजिक सम्बंधों पर आधारित रही है। वह इस बात पर जोर देता है कि माल्थस तथा रिकार्डो आदि शास्त्रीय अर्थशास्त्री अपने से पहले हुए अर्थशास्त्रियों के प्रति कितने उग्र रहे हैं। सामान्य ऐतिहासिक पद्धति में अर्थव्यवस्था समाज के अधीन मानी जाती थी। स्व नियंत्रित बाजारों की प्रणाली समाज को अपने नियंत्रण में लेने के तर्क पर आधारित है। अपनी पुस्तक 'द ग्रेट ट्रांस्फोर्मेशन' के एक भाग में पोलेनी ने लिखा है – ''अंततः एसा क्यों हो रहा है कि बाजार आर्थिक प्रणाली को प्रभावित कर रहा है, समाज बाजार का अनुलग्नक मात्र रह गया है। अर्थव्यवस्था सामाजिक सम्बंधों पर आधारित नहीं रह गई है। सामाजिक संबंध आर्थिक प्रणाली पर आधारित हो गये हैं।''

तात्विकतावादी अर्थव्यवस्था में सैद्धांतिक रूप से अर्थव्यवस्था मनुष्यों के सामाजिक संबंधों के अधीन तथा उनसे संलग्न रहती है। मनुष्य ऐसा व्यवहार नहीं करता कि भौतिक पदार्थों के संग्रह में केवल अपना ही हित साधे। वह इस तरह व्यवहार करता है कि उसकी अपनी सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। उसका सामाजिक महत्व स्थापित हो, समाज में उसका स्तर, उसकी समृद्धि बढ़े केवल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह भौतिक पदार्थों को महत्व देता है। उत्पादन के तरीके, उत्पादों के वितरण आदि के केंद्र में आर्थिक लाभ नहीं होता, बल्कि सामाजिक हित या समाज में उसके अपने महत्व का भाव रहता है और सारे प्रयास इसी दिशा में किये जाते है। सीमित स्तर पर शिकार करके गुजारा करने वाली या मछलियों सुविशाल निरकुश समाज की रुचियों से पूरी तरह भिन्न होती है। स्थिति चाहे जो हो परन्तु अर्थ प्रणाली गैर आर्थिक मंतव्यों से ही संचालित होती है। मालिनोवस्की के कुला–व्यापार'को पोलेनी तात्विकतावादी अर्थव्यवस्था का उदाहरण मानता है। (1977) पोलेनी कहता है कि पूर्ण स्व नियंत्रित बाजारवादी अर्थव्यवस्था मनुष्यों तथा प्रकृति के वातावरण।

पोलेनी कहता है कि शास्त्रीय अर्थशास्त्रीयों ने ऐसे समाज का विचार सामने रखा जिस पर अर्थव्यवस्था प्रभावी ढंग से आधारित है तथा इसके लिए वे वैचारिक प्रचार के उद्देश्य को पूरा करने के हेतु राजनैतिक उपकरण का इस्तेमाल करते हैं। वह इस बात पर भी जोर देता है कि लोग यह उद्देश्य प्राप्त नहीं कर पाये और प्राप्त कर भी नहीं सकते थे। पोलेनी बार–बार यह कहता है कि समाज से अलग तथा स्व–नियंत्रित बाजारवादी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य एक कपोल–कल्पना मात्र है। वे एक ऐसी अवस्थिति की कल्पना कर रहे हैं जिसका अस्तित्व ही नहीं है। उदाहरण के लिए अपनी पुस्तक 'द ग्रेट ट्रांसफॉर्मेशन के प्रथम भाग के पहले पृष्ठ पर वह लिखता है – ''हमारे शोध का निष्कर्ष यह है कि स्व नियंत्रित बाजारों का विचार एक आधारहीन परिकल्पना है। इस तरह का संस्थान अधिक लम्बी अवधि तक टिक नहीं पायेगा। क्योंकि मनुष्य तथा समाज के सार–तत्व का नाश किये बिना बाजारवादी अर्थव्यवस्था लम्बे समय तक जिंदा नहीं रह सकती। इस अर्थव्यवस्था ने मनुष्य को शारीरिक रूप से भारी क्षति पहुँचाई है तथा अपने परिवेश को उजाड़ बना दिया है। (पोलेनी, 1977)।

पोलेनी कहता है कि पूरी तरह स्वतंत्र बाजारों वाली अर्थव्यवस्था को जन्म देने का अर्थ यह है कि मनुष्य तथा प्राकृतिक पर्यावरण दोनों ही निपट वस्तुओं में बदल जायेंगे। अर्थात वे भी बाजार में बेचे और खरीदे जा सकेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि समाज तथा प्रकृति के पर्यावरण को नष्ट होना होगा। पोलेनी के अनुसार स्वतंत्र बाजारों के अथवा बाजारों की स्वतंत्रता की वकालत करने वाले सिद्धांतकार मानव–समाजों को लगातार खड़ी चट्टान की और धकेल रहे हैं। इस प्रक्रिया में अनर्गल रूप से बाजार अस्तित्व में आ गये हैं, लोग विरोध करते हैं तो खड़ी चट्टान से टकराकर नष्ट हो जाते हैं। अब यदि वे स्व–संचालित बाजारों के सिद्धांतों को त्याग कर समाज व प्रकृति को विनाश से बचाने के उद्देश्य से वापस लौटते हैं तो यह संभव नहीं हो पाता। आधुनिक औद्योगिक समाज में बाजारों को समाज से अलग करना एक विशाल लचीले बैंड को खींचते चले जाना है। इससे तनाव का स्तर बढ़ेगा ... फिर हम बैंड को और खीचेंगे तो या तो सामाजिक विघटन हो जायेगा या फिर अर्थव्यवस्था और अधिक आश्रित अवस्था में लौट जायेगा। अंततः स्वतंत्र बाजार के समर्थकों का समाज से बाजारों को अलग करने का प्रयास बेनतीजा साबित होगा। (फिर वही, 1977)

पोलेनी का तात्विकतावादी प्रतिमान पूरी तरह सापेक्षवादी है। इसके अनुसार अर्थव्यवस्था पूरी तरह विभिन्न समाजों में विभिन्न तार्किक सिद्धांतों पर आधारित होती है। इसलिए, पूंजीवाद को समझने वाले उपकरण से प्राचीन काल से चली आ रही परम्परागत अर्थव्यवस्था को समझना चाकू से विमान के इंजन की मरम्मत करने जैसा है। वह इस बात पर जोर देता है कि अनुभववादी अर्थव्यवस्था अथवा तात्विकतावादी अर्थव्यवस्था एक दूसरे से अंतर्सम्बन्धित हैं तथा सामाजिक संरचनाओं में रची बसी हैं। गैर आर्थिक घटकों वाली अर्थव्यवस्था सामाजिक समरसता एकता तथा स्थायित्व लाती है। इस अर्थव्यवस्था में इसके मार्ग दरों में पारस्परिक निर्भरता तथा पुनरावर्तन की स्थिति बनी रहती है। बहुत थोड़े से तरीकों के मिले जुले प्रयासों से इसकी उपलब्धि सम्भव हैं – इन्हें एकीकरण के रूप माना जाता है। पोलेनी के लिए अर्थव्यवस्था एकीकरण के तीन रूपों के संतुलन द्वारा व्याख्यायित की जाती हैं – (1) पारस्परिकता (2) पुनर्वितरण तथा (3) आदान–प्रदान। प्रसार के इन तीन तरीकों की अलग–अलग पहचान करता है जो मानव इतिहास में अस्तित्व में आये विभिन्न समाजों में विभिन्न अनुपातों में सदा साथ–साथ मौजूद रही हैं।

2.2.2.2 पारस्परिकता, पुनर्वितरण तथा आदान–प्रदान

पारस्परिकता, पुनर्वितरण तथा आदान–प्रदान के तीन आयाम हैं जिनके माध्यम से समाज में चीजों का उत्पादन व विवरण होता है। पारस्परिकता वस्तुओं तथा सेवाओं के वितरण का ऐसा स्वरूप है जिसमें एक दूसरे के प्रति सहयोग व साझेदारी कृतज्ञता का भाव निहित रहता है। वस्तुओं तथा सेवाओं का उन लोगों के बीच आदान–प्रदान होता है जो एक दूसरे से पारिवारिकता, अथवा कुल एकता जैसे सूत्रों से जुड़े होते हैं। पुनर्वितरण वस्तुओं तथा सेवाओं के आदान–प्रदान के उस स्वरूप को दर्शाता है, जहाँ एक केंद्रीय अधिकरण द्वारा हर किसी से वस्तुओं व सेवाओं का संकलन किया जाता है और फिर उन्हें वितरित कर दिया जाता है। इन दोनों व्यवस्थाओं के विपरीत आदान–प्रदान का एक तरीका बाजार–प्रणाली होती है जिसमें उत्पादों के वितरण का आधार उनका मूल्य होता है। पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ मुख्य रूप से एकीकृत होती हैं। पारस्परिकता और पुनर्वितरण इनके आधार होते हैं। जबकि पूंजीवादी समाज आदान–प्रदान की बाजार प्रणाली द्वारा एक दूसरे से जुड़ते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि पूर्व पूंजीवादी समाज के पास सक्रिय बाजार नहीं थे। बाजार स्थल हुआ करते थे, जहाँ पहुँचकर लोग व्यापारिक गतिविधियाँ करते थे। परन्तु ये बाजार स्व–नियंत्रण नियमों द्वारा संचालित नहीं था। यद्यपि वस्तुओं व सेवाओं के वितरणों/संचार को तीनों प्रणालियाँ मौजूद थीं जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में होती हैं। परन्तु प्राथमिकता आदान–प्रदान तथा पारस्परिकता को दी जाती थी तथा पुनर्वितरण को परिधि पर रखा जाता था। व्यवहार प्राथमिकता वाले क्षेत्र को अपनाया जाता था।

पूर्व पूंजीवादी तथा समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ मुख्यतः पारस्परिकता तथा पुनर्वितरण पर ही जोर देती है। ''परिणामस्वरूप वाणिज्यिक आदान–प्रदान के लिए भौतिक रूप से केवल बाजार–स्थल का होना या धन–राशि का मौजूद होना ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अस्तित्व के लिए जरूरी नहीं है। अनेक पारंपरिक अर्थव्यवस्थाओं में पैसे/मुद्रा की भूमिका निभाने वाली चीजें पाई जाती थीं, परंतु पैसों का इस्तेमाल सामान्य उपयोग की चीजों के आदान–प्रदान के लिए नहीं किया जाता था, न ही इन्हें सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त थी, जैसा कि बाजारवादी अर्थव्यवस्था में होता है। क्योंकि विशेष उद्देश्य के लिए

उपयोग में लाई जाने वाली मुद्रा तथा वस्तुओं अथवा सेवाओं का समाज के खास क्षेत्रों में आपस में ही आदान–प्रदान किये जाने पर प्रतिबंध रहता है।

पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्थायें बहुकेन्द्रित होती है, उनमें आदान–प्रदान के अनेक आयाम मौजूद रहते हैं। इसके ठीक विपरीत पूंजीवादी अर्थव्यवस्थायें एक केन्द्रीय होती हैं। क्योंकि सभी वस्तुएं, सेवायें तथा उत्पादन के स्रोत आदान–प्रदान के एकीकृत क्षेत्र में प्रवाहित होते हैं, जिन्हें बाजार के नियमों द्वारा संगठित किया जाता है और सभी उद्देश्यों के लिये पैसे का इस्तेमाल किया जाता है। आधुनिक बाजारवादी आदान–प्रदान में पैसा और मूल्य निर्धारित करने के लिये सौदेबाजी करना अर्थव्यवस्था का आधार बन गया है। औद्योगिक क्रांति के साथ ही यूरोप की अर्थव्यवस्था बाजार तथा मूल्य केंद्रित हो गई। बाजार प्रणाली केवल तभी अस्तित्व में आती है जब भूमि, श्रम तथा धन आदि फर्जी वस्तुओं के रूप में बाजार में मूल्य लगाये जाने लगते हैं। जब आमदनी अधिकतर लोगों के लिये बाजार पर निर्भर हो जाती है और बाजार स्वयं बाजारवादी अर्थव्यवस्था बन जाते हैं। बाजार समाज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते हैं और अंततः बाजार ही समाज बन जाते हैं।

गतिविधि 1

पड़ोस में लगने वाले बाजार या हाट या खरीदारी केन्द्र पर जाइये वहां ग्राहकों और दुकानदारों अथवा विक्रेताओं के बीच होने वाली दस गतिविधियों की सूची तैयार कीजिये।

पूजा स्थल, जन्म अथवा मृत्यु स्थल अथवा शादी में जाइये, इन अवसरों पर परिवारों तथा पुजारियों के बीच होने वाले उपहारों अथवा नकदी के आदान–प्रदानों की सूची तैयार कीजिये।

तुलनात्मक दृष्टि से आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान पर दो पृष्ठों का एक आलेख तैयार कीजिये।

बोध प्रश्न 1

1) आर्थिक नृविज्ञान/समाजशास्त्र का क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) कार्ल पोलेनी के आर्थिक समाजशास्त्र पर किसका प्रभाव पड़ा था?

.....

.....

.....

.....

.....

3) औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद की तुलना 10 पंक्तियों में करिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.3 भारत में दान–धर्म : मार्सेल मौस द्वारा उपहार आदान–प्रदान का एक अध्ययन

पारस्परिकता तथा पुनर्वितरण की प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए, आइए कुछ उदाहरणों पर विचार करें – मार्सेल मौस ने अपनी पुस्तक 'गिफ्ट एक्सचेंज' में विविध पूर्व पूंजीवादी समाजों का वर्णन किया है जिनमें यह बताया है कि पारस्परिकता तथा पुनर्वितरण अर्थव्यवस्था के एकीकरण तथा प्रचलन की पूर्व अवस्था है। मेलनेसिया, पॉलिनेसिया, अंडमान द्वीपसमूह तथा उत्तरी अमेरिका के उत्तर पश्चिमी तट के कुछ मामलों की जांच पड़ताल पर आधारित प्रमुख विवरणों को मौस ने उदाहरणों के तौर पर प्रस्तुत किया है। इन समाजों में उपहार अर्थव्यवस्था के तीन नैतिक दायित्वों के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई। ये तीन दायित्व हैं – देना, प्राप्त करना तथा उपहारों का विनिमय। रोम, भारत तथा जर्मनी आदि देशों में प्राचीन अर्थव्यवस्थाओं के वैधानिक कोड पाये जाते हैं। मौस ने इनमें उपहार अर्थव्यवस्था के अस्तित्व का पता लगाया।

इनके आधार पर मौस ने दान–धर्म के सिद्धांत का पता लगाया जो ब्राह्मणों से संबंधित था। भारत में उपहार आदान–प्रदान का सिद्धांत 'महाभारत नामक' महाकाव्य से लिया गया है। इस महाकाव्य का अनुशासन पर्व में उपहार प्रथा का विशेष रूप से वर्णन है। इस आधार पर मौस ने वैदिक युग में उपहारों के आदान–प्रदान वाली अर्थव्यवस्था के अस्तित्व को स्वीकारा है।

वह महाभारत को असाधारण कुम्भकारों की कहानी मानता है। पोतलेच विभिन्न आदिवासी समाजों में प्रचलित एक परम्परा है (जैसा कि ट्रॉब्रिएंड द्वीपों का अध्ययन करते समय नृविज्ञानी बोनिस्लॉ तथा मेलिनावस्की ने किया था। जिसमें उपहार दिये जाते हैं यह सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि के प्रतीक के रूप में नष्ट कर दिये जाते हैं। मौस महाभारत में कौरव–पांडवों के बीच हुए पाशों के खेल को पॉटलेच का भारतीय संस्करण मानता है। वह महाभारत में सेन्य महोत्सव का भी वर्णन करता है, जिसमें द्रौपदी अपने लिए पति चुनती है।

इस प्रकार आर्थिक धर्मशास्त्र एक विचार प्रस्तुत करता है कि उपहार देने वाले का विस्तार होता है, अर्थात उपहार में व्यक्ति स्वयं को ही दे डालता है। एक अर्थ में उपहार देने वाले दूर नहीं जाता है। बल्कि, ऐसा कहा जाता है कि – ''दान के रूप में जो कुछ इस जन्म में दिया जाता है, वह देने वाले को अगले जन्म में स्वयं प्राप्त होता है।'' (मौस : 54) इस प्रकार उपहार स्वयं को पुनरोत्पन्न करता है, जैसा कि मौस लिखता है – ''देने वाला जितना देता है, वह उसे वापस मिल जाता है, दान खत्म नहीं होता, बल्कि वह पुनरूत्पादित हो जाता है। देने वाले को दिया हुआ और

बढ़कर वापस मिलता है। किसी को भोजन देने का मतलब है इस जन्म में दिया गया भोजन देने वाले को विभिन्न रूपों व मात्राओं में अगले जन्मों में प्राप्त होगा। लोग इसीलिए कुँए खुदवाते थे। जो पानी के स्रोत दान किये जाते थे, वे प्यास के जीवन–बीमा की तरह माने जाते थे। इसी प्रकार कपड़े, शीतल छाया, सोना, तपती धरती से सुरक्षा के लिए चप्पल आदि का दान इसीलिए दिया जाता था कि वह सब इस जीवन का भविष्य में अन्य जीवनों वापस मिल जायेगा, वह भी बढ़कर।

वह आगे तर्क देता है कि यह अर्थव्यवस्था नैतिक व आर्थिक रूप से नियंत्रित थी जिसमें किसी औपचारिक करार, लिखित दस्तावेज, बौंड आदि की आवश्यकता नहीं थी। आज की बाजार मूलक अर्थव्यवस्था से यह व्यवस्था, नितांत भिन्न थी। बाजारमूलक अर्थव्यवस्था में चीज प्राप्त करने के लिए उनकी कीमत चुकानी पड़ती है।

उम्मीद है अब तक आपको औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद में अंतर समझ में आ गया होगा। अपनी पुस्तक 'गिफ्ट एक्सचेंज' में मौस ने औपचारिकतावाद और तात्विकतावाद के बीच छिड़ी बहस की सीमाओं को चिन्हित किया है। तात्विकतावाद विचार धारा का एक सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने पूंजीवाद को वैश्विक अर्थव्यवस्था बताने वालों को चुनौती दी है। एशिया तथा अफ्रीका के विभिन्न समाजों में मौजूद रही पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं का अध्ययन करके तात्विकतावादियों ने यह साबित कर दिया है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के विकल्प मौजूद हैं। कार्ल पोलेनी ने पारस्परिकता तथा पुनर्वितरण पर आधारित समाजवादी अर्थव्यवस्था वैकल्पिक रूप में प्रस्तावित किया था, परन्तु आर्थिक समाजवाद तथा नृविज्ञान के बीच की बहस की अपनी सीमायें हैं। जहां यह वस्तुओं और सेवाओं के वितरण को केन्द्र में रखकर चलती है वहीं वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के अर्थव्यवस्था में महत्व को नजरअंदाज कर देती है। जबकि सच्चाई यह है कि उत्पादन एवं वितरण दोनों ही अर्थव्यवस्था के अलग–अलग क्षेत्र हैं। यही कमी मौस के अर्थव्यवस्था संबंधी उपहारों के आदान–प्रदान संबंधी विचारों को लेकर है जो उन्होंने भारत के लोकप्रिय महाकाव्य महाभारत से ली है।

2.3.1 उपहारों के आदान–प्रदान की आलोचना

पहली बात तो यह है कि जिस उपहार मूलक अर्थव्यवस्था का विश्लेषण मौस ने किया है वह भारत में अब मौजूद ही नहीं है। तीन महत्वपूर्ण दायित्व जो मॉस के अनुसार उपहार अर्थव्यवस्था में अंतर्निहित हैं, वे है – देने का दायित्व, प्राप्त करने का दायित्व तथा पारस्परिकता का दायित्व। भारतीय संदर्भ में देने का दायित्व ब्राह्मणों के संदर्भ में अस्तित्व में ही नहीं है, हां ब्राह्मणों में प्राप्त करने का दायित्व जरूर मिलता है इसी प्रकार क्षत्रियों में प्राप्त करने का दायित्व होता ही नहीं है केवल देने का दायित्व होता है, इस पूरे प्रकरण में शूद्र पूरी तरह गायब हैं, क्योंकि ब्राह्मण उनसे दान में पक्का खाना लेते ही नहीं। दायित्व वाली इस प्रथा से अछूत पूरी तरह गायब हैं। थॉमस ट्रॉटमानिन ने मॉस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है –

'महाभारत में पॉटलैच की बात करें तो, समझ में आयेगा कि मॉस क्या कहना चाहता है। लड़ाकू वर्ग जो दुश्मनी की भावना से भरे थे और प्रतिष्ठा की ग्रंथि से पीड़ित थे वे पाशे के खेल में उद्यत हुए। जिसमें उन्होंने स्वेच्छा से सबकुछ दाव लगा दिया। उन्होंने धन विद्या में प्रतियोगिताओं का आयोजन किया और राजकुमारियों को विवाह हेतु प्राप्त करने के आयोजन भी किये। वे धन को इकट्ठा करने में प्रतिष्ठा और शान

का इतना अनुभव नहीं करते थे जितना इन प्रतियोगिताओं को जीतने में। इस तरह हम देखते हैं कि पॉटलैच लोकाचार पूरी तरह इनमें मौजूद था। पाशों का खेल अथवा ऐसी ही अनेक प्रकार की अन्य प्रतियोगिताएं जिनमें सब कुछ दाव पर लगा दिया जाता था और सब कुछ हार जाने की संभावनाएं सन्निहित थीं, ऐसी चीजों में तो महाभारत के नायक पूरी तरह लिप्त दिखाई देते हैं, परन्तु दान प्रतियोगिताओं का आयोजन करने में जिनमें अधिक से अधिक देकर विरोधी को हरा दिया जाये, वे रुचि लेते नहीं दिखते। इस दौर के नायकों में ऐसे नैतिक मानदंड भी दिखाई नहीं पड़ते जो पॉटलैच प्रतियोगिताओं की तुलना में उच्चतर दिखते। जिनमें देने के दायित्व प्राप्त करने के दायित्व तथा पारस्परिकता के दायित्व पॉटलैच प्रतियोगिताओं के नियम समझे जा सकते हैं। इस दौर के योद्धाओं में जो विशेषतायें देखने को मिलती हैं उनमें क्षत्रिय धर्म सबसे ऊपर है। जैसे राजा ऐसे किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने से साफ इन्कार कर देते थे जो हीनता तथा दासता का प्रतीक हो (हारा, 1974)। केवल ब्राह्मण ही उपहार स्वीकार करने का दायित्व निभाते थे। दान देने तथा पारस्परिक रूप से उपहारों अथवा दान के आदान प्रदान की परम्परा ब्राह्मणों में थी ही नहीं। इस प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार जिसमें दान देना इतना सौहार्दपूर्ण दिखाई देता है कि पान देने वाला जैसे स्वयं को ही दान कर रहा हो उसमें उसका व्यक्तित्व एक तरफा दिखाई पड़ता है। परंतु जो व्यक्ति दान लेता है जैसे ब्राह्मण, उसके अंदर बदले में कुछ देने की इच्छा दिखाई ही नहीं पड़ती ऐसे में दान, धर्म को अर्थव्यवस्था का आधार कैसे माना जा सकता है।

2.4 सारांश

इस इकाई में आपने औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद के बीच आर्थिक नृविज्ञान में छिड़ी बहस के बारे में पढ़ा। औपचारिकतावादियों का तर्क है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तथा इससे संबंधित विचारों को विश्व स्तर पर स्वीकार किया जाना चाहिए। जबकि तात्विकतावादी कार्ल पोलेनी के विचारों को महत्व देते हैं और औपचारिक अर्थव्यवस्था की आलोचना करते हैं। उनका तर्क यह है कि पूर्व–पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में जो सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ निहित थे, केवल निजी लाभ नहीं, उन्हें महत्व दिया जाना चाहिए। तात्विकतावादी उत्पादों व सेवाओं के समाज में वितरण के तीन रूपों पर जोर देते है, ये हैं – पारस्परिकता, पुनर्वितरण तथा आदान–प्रदान। पोलेनी पूंजीवादी उत्पादन के तरीकों को (जिसकी व्याख्या उसने बाजारवादी अर्थव्यवस्था तथा बाजार–समाज के रूपों में की है) आर्थिक संगठन के अन्य तरीकों से, सामाजिक निर्भरता के आधार पर भिन्न मानता है। उसका कहना है कि पूर्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन की प्रक्रिया कम या ज्यादा परिवार, आस–पड़ोस, समुदाय आदि विविध संस्थानों पर आधारित थी। पूर्व पूंजीवादी उत्पादन की इस आधारितता या निर्भरता ने पोलेनी को आर्थिक जीवन के रूपों को वितरण के पारस्परिक सिद्धांतों के आधार पर समझने के लिए प्रेरित किया, न कि उनके उत्पादन के सामाजिक सम्बंधों के आधार पर।

इस प्रकार पोलेनी तर्क देता है कि उत्पादन को अन्य सामाजिक गतिविधियाँ से अलग कर देना ठीक नहीं है। भौतिक संसाधनों का वितरण संचालन के सिद्धांतों से प्रभावित होता है, यह बात सब जानते हैं। परन्तु पूंजीवाद का अभ्युदय ने भौतिक उत्पादन को सभी गैर–सामाजिक संस्थानों से अलग कर दिया और स्व नियंत्रित बाजारों वाली

अर्थव्यवस्था को विकसित होने के सस्ते खोल दिये जिसके संचालन के मूल में अवस्थित अधिकतम लाभ कमाने की प्रवृत्ति को आर्थिक तर्क संगतता माना जाने लगा।

2.5 संदर्भ

- इकॉनोमिक एंथ्रोपोलॉजी : एन अनडिसीप्लिंड डिसीप्लिन (फ्रॉम द रीडर)
- इंट्राड्यूसिंग इकॉनोमिक सोस्योलॉजी – जे नील स्मैल्सर एण्ड रिचार्ड स्वदेवर्ग, मार्सेल मौस : द गिफ्ट।
- द गिफ्ट इन इंडिया, एच ए यू जर्नल ऑफ एथनोग्रेफिक थ्यौरी 7, नं. 2, पृ. 485–496 – थॉमस ट्रॉटमेन, 2017।
- सटेंटिविज्म, कल्चरेलिज्म एण्ड फॉर्मेलिज्म इन इकॉनोमिक एंथ्रोपोलॉजी – सरग्यू बालान।
- 'द लाइवलीहूड ऑफ मेन' – कार्ल पोलेनी न्यूयार्क एकेडैमिक प्रैस, 1977 चैप्टर्स 1 व 2 – द इकॉनोमिस्ट फेलेसी एण्ड टू मीनिंगस ऑफ इकॉनॉमिक पृ. 5–34.
- ''इकॉनोमी एज एन इंस्टीट्यूटिड प्रौसेज – कार्ल पोलेनी। द सोश्योलॉजी ऑफ इकोनामिक लाइफ – एमग्रेनोवेटर एण्ड आर स्वेडवर्ग वैस्ट न्यू प्रैस, कोलोरेडो, बोल्डर, 1992 (पृ. 29–50)।
- द ग्रेट ट्रांस्फॉर्मेशन, इंट्रोडक्शन, चेप्टर 4 एंड 5 – कार्ल पोलेनी।
- प्रीफेस टू ए कंट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पॉलिटीकल इकोनॉमी इन सलैक्टिड वर्क्स वॉल्यूम–1, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को 1859, पृ. 502–506।
- एंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल एण्ड कल्चरल एंथ्रोपोलॉजी – ए बनार्ड एण्ड जे स्पेंसर रूटलैग, लंदन 1996, पृ. 172–8।
- इकॉनोमिक्स एण्ड कल्चर : फाउंडेशन्स एकॉनोमिक एंथ्रोपोलॉजी – वैस्ट व्यू प्रैस कोलोराडो, बोल्डर 1996 चेप्टर 1 पृ. 1–18 – आर विल्क।
- इकॉनोमिक एंथ्रोपोलॉजी – क्रिस हान एण्ड हार्ट कीथ – पोलिटी प्रैस 2011 चैप्टर – 5।
- आफ्टर द फोर्मेलिस्ट स्बसटेंटिविस्ट डिबेट पृ. 72–99 चेप्टर – 2, इकॉनोमी फ्रॉम द एंसियेंट वर्ल्ड टू द एज ऑफ इंटरनेट, पृ. 18–36।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आर्थिक नृविज्ञान/समाजशास्त्र को दो विचारधाराओं के माध्यम से समझा जा सकता है – (i) औपचारिकतावाद (ii) तात्विकतावाद एक का संबंध शास्त्रीय अर्थशास्त्र से है जिसे मेलविले हर्सकूरिस्ट ने प्रतिपादित किया है जो पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से जुड़ा है। दूसरा तात्विकतावाद है जिसका सम्बंध गैर–पूंजीवादी समाजों के आर्थिक जीवन से है, जैसे कार्ल पोलेनी।

2) जर्मनी के समाजशास्त्री, मेक्स वेबर का कार्ल पोलेनी पर प्रभाव था।

3) औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद की स्थापना कार्ल पोलेनी ने की थी जिनके दोनों में अलग–अलग पद्धति विज्ञान संबंधी विभेद हैं। औपचारिकतावाद एक विशेष प्रकार के समाजशास्त्र से जुड़ा है जिसके मूल में निगमात्मक तथा तर्कसंगत विचारधारा है। जबकि तात्विकतावाद नृविज्ञान से जुड़ी विचारधारा है जो अनुभव तथा व्याख्या पर आधारित है। औपचारिकतावादी विचारधारा आर्थिक अधिसंख्य व्यक्तियों की आर्थिक तर्कसंगतता पर आधारित है। जबकि तात्विकतावाद एक ऐसी अर्थव्यवस्था में विश्वास रखता है जो सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भों से संबंधित है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 नया आर्थिक समाजशास्त्र*

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 नये आर्थिक समाजशास्त्र का अर्थ

3.3 नये आर्थिक समाजशास्त्र की उत्पत्ति तथा विकास

3.3.1 संस्थागत अर्थशास्त्र

3.3.2 नया आर्थिक समाजशास्त्र

3.4 अर्थशास्त्र तथा नये आर्थिक समाजशास्त्र में विभिन्न विचारकों का योगदान

3.4.1 कार्ल पोलेनी (1886–1964)

3.4.2 मार्क ग्रेनोवेटर (1943)

3.4.3 पॉल डी मेगिओ (1951)

3.4.4 नील फिलिग्सटन (1951)

3.4.5 रिचार्ड स्वेदबर्ग (1948)

3.5 आर्थिक जीवन की सामाजिक व सांस्कृतिक निर्भरता : वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य

3.6 सारांश

3.7 संदर्भ

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद समझ सकेंगे :–

- नये आर्थिक समाजशास्त्र का अर्थ;
- आर्थिक समाजशास्त्र संबंधी हाल तक के विकास पर चर्चा;
- समाजशास्त्र से जुड़े विद्वानों का बौद्धिक योगदान, जैसे कार्ल पोलेनी, मार्क ग्रेनोवेटर, पॉल डी मेगिओ, फिलिग्सटन तथा रिचार्ड स्वेदबर्ग।
- नये आर्थिक समाजशास्त्र की अवधारणा की व्याख्या।

3.1 प्रस्तावना

इससे पहले इकाई में आपकी दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं – औपचारिकतावाद तथा तात्विकतावाद के बारे में पढ़ चुके हैं जो आर्थिक समाजशास्त्र से ही संबंधित हैं। इस इकाई में हम आर्थिक समाजशास्त्र में आए अनेक परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे तथा इसमें सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री मार्क ग्रेनोवेटर नील फिलग्सटीन, आर. स्वेदबर्ग आदि का

* डॉ. सूरज बेरी द्वारा लिखित।

क्या योगदान रहा है, यह जानेंगे। आर्थिक जीवन के समाजशास्त्र में हुए विकास के बारे में बताते समय आर्थिक जीवन की सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों पर निर्भरता तथा आर्थिक समाजशास्त्र में नई संभावनाओं के बारे में बताया जायेगा।

3.2 नये आर्थिक समाजशास्त्र का अर्थ

समकालीन आर्थिक जगत तथा इसमें आई नई संभावनाएं सामाजिक अंतर्सम्बंधों का निर्माण करती हैं तथा व्यापक सामाजिक रूझानों द्वारा स्वयं भी नये स्वरूप धारण करती हैं। बाजार तथा संस्थानों के संगठन सामाजिक असमानताओं के आधार कैसे तैयार करते हैं। किस प्रकार उपभोक्तावाद सामाजिक स्वरूप धारण कर लेता है और सामाजिक बहिष्करण की जमीन तैयार करता है। आर्थिक समाजशास्त्री इन प्रश्नों के आधार पर इसके बौद्धिक इतिहास में अपना योगदान देते हैं। आधुनिक युगों के समाजशास्त्री अर्थव्यवस्था में नैटवर्क के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग पर बहुत काम कर चुके हैं। विशेष रूप से अर्थव्यवस्था, आर्थिक संस्थानों के निर्माण तथा आर्थिक जीवन में संस्कृति की भूमिका पर। अर्थशास्त्रियों ने नवीन संस्थात्मक अर्थशास्त्र का विकास किया है इसका उद्देश्य सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सहायता से आर्थिक संस्थानों के कार्यों की व्याख्या करना है। दूसरी ओर समाजशास्त्रियों ने आर्थिक समाजशास्त्र का विकास किया है जिसे आर्थिक जीवन का नया समाजशास्त्र कहा जाता है, यद्यपि दोनों नये संस्थागत अर्थशास्त्रों तथा नये आर्थिक जीवन के समाजशास्त्र में कुछ कमजोरियां हैं, फिर भी उन्होंने आर्थिक समाजशास्त्र में नवजीवन का संचार किया है।

नये आर्थिक समाजशास्त्र का उदय एक दशक पहले ही हुआ था, परंतु इसकी जड़ें आरंभिक रूप से 1980 के दशक में देखी जा सकती हैं। विद्वान यह तर्क देते हैं कि नया आर्थिक समाजशास्त्र तब चर्चा में आया जब ग्रेनोवेटर ने निर्भरता की अवधारणा की स्थापना की। अपने महत्वपूर्ण लेख 'इकोनॉमिक एक्शन एण्ड सोशल स्ट्रक्चरः द प्रोब्लम ऑफ एम्बैडिडनैस में, जो नवम्बर 1985 में 'अमेरिकन जरनल ऑफ सोश्योलॉजी' के अंक में प्रकाशित हुआ। इसमें ग्रेनोवेटर ने नये संस्थागत अर्थशास्त्र की सुव्यवस्थित आलोचना की है। उन्होंने आर्थिक जीवन में गैर आर्थिक घटकों की भूमिका पर प्रकाश डाला है। हम देख रहे हैं कि पिछले दो दशकों में आर्थिक समाजशास्त्र में नये–नये गैर आर्थिक घटकों का समावेश हुआ है। जैसे – धन, उद्यमशीलता तथा अर्थव्यवस्था में कानून की भूमिका ग्रेनोवेटर से पहले ही आर्थिक समाजशास्त्र ने विभिन्न दिशाओं में नई अंतर्दृष्टि देखने को मिली थी, इसी सिलसिले में सुप्रसिद्ध विद्वान ग्रेनोवेटर की निर्भरता की अवधारणा सामने आई और नील फ्लिंगस्टीन स्वेदबर्ग के बाजारों पर विचार सामने आये। जब 1980 के दशक के मध्य में आर्थिक समाजशास्त्र को पुनर्जीवित किया गया और इसने सिद्धांत का रूप धारण किया, तब समाजशास्त्रियों को आघात पहुंचा। समाजशास्त्रियों के बीच यह धारणा प्रबल थी कि वे समाजशास्त्र के क्षेत्र में अपने विचारों को प्रधानता देते तथा उनके आधार पर समाजशास्त्र के नये स्वरूपों की व्याख्या करते और उनके द्वारा की गई व्याख्यायें अर्थशास्त्र की मुख्यधारा से अलग होती, परंतु ऐसा कुछ हो नहीं पाया। आर्थिक समाजशास्त्र की विरासत, विशेषरूप से मैक्स वेबर के आर्थिक समाजशास्त्र पर विचार समाजशास्त्रियों के लिये इस दिशा में उपयोगी साबित नहीं हुए क्योंकि उन्हें ठीक से प्रचारित नहीं किया जा सकता।

3.3 नये आर्थिक समाजशास्त्र की उत्पत्ति तथा विकास

अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के बीच मौजूद व्यापक क्षेत्र में दो ऐसी विचारधाराओं का उदय हुआ जो आर्थिक समाजशास्त्र के लिये विशेष रूप से उपयोगी थीं, और इन दोनों के मिलने से नये आर्थिक समाजशास्त्र का उदय हुआ। इन दो विचारधाराओं के नाम है 'नया संस्थागत अर्थशास्त्र' तथा 'आर्थिक जीवन का नया समाजशास्त्र'।

3.3.1 संस्थागत अर्थशास्त्र

सबसे पहले अर्थशास्त्रियों ने नवीन संस्थागत अर्थशास्त्र का विकास किया था, यद्यपि कुछ समाजशास्त्री भी इस क्षेत्र में काम कर रहे थे। इसमें अंतर्निहित प्रमुख विचार यह था कि सामाजिक व्यवहार तथा सामाजिक संस्थानों की व्याख्या करने में सूक्ष्म अर्थशास्त्र का इस्तेमाल किया जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से यह विचार आर्थिक समाजशास्त्र की तुलना में अधिक व्यापक है, परंतु व्यावहारिक स्तर पर यह उस तरह काम नहीं करता। जैसा कि शुम्पीटर ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है – ''आर्थिक समाजशास्त्र संस्थानों का विश्लेषण होता है जिनकी आर्थिक व्यवहार में प्रासंगिकता है। यहाँ यह बात का उल्लेख किया है कि नया संस्थागत अर्थशास्त्र वैबलेन के अमेरिकन संस्थानवाद से मेल नहीं खाता है। बौद्धिक क्रांति के रूप में नये संस्थागत अर्थशास्त्र की जड़ें 1950 के दशक में पायी जाती हैं। यद्यपि 1970 से पहले नया संस्थागत अर्थशास्त्र अस्तित्व में नहीं आ पाया था। 1950 और 1970 के बीच यह विभिन्न वैधानिक, राजनैतिक तथा सामाजिक संस्थानों में अभिव्यक्ति पाता रहा।

1970 में कुछ अर्थशास्त्रियों ने संगठनात्मक व्यवहार के नये सिद्धांतों के बारे में बात करना आरम्भ कर दिया था। सूचना, सौदा तथा कीमतें आदि शब्दावालियों के माध्यम से वे इसका परिचय देने लगे थे। इनमें से हर सिद्धांत थोड़े बहुत अंतर के साथ संगठनों की संचनाओं के उद्भव की व्याख्या करता है। संस्थागत सिद्धांत में इस बात पर जोर दिया जाता है कि श्रमिक अर्थशास्त्र पर गणितीय प्रतिमान हावी हो गये थे। इस दौर में जो विचार धारायें सामने आई उनके केन्द्र में सामाजिक संस्थान इतने अधिक नहीं थे जितनी दक्षता की भावना थी। विचारक यह तर्क दिया करते थे कि अर्थशास्त्र व्यवस्था में अथवा अन्य संबंधित क्षेत्र में इसके द्वारा मौजूदा संस्थानों की व्याख्या नहीं की जा सकती जैसे (ग्रेनोवेटर, 1985)। यद्यपि अब भी तथाकथित नये संस्थागत अर्थशास्त्री इस समय संस्थानों का अध्ययन ही कर पा रहे थे, तभी उनका ध्यान निजी प्रयास करने वाले व्यक्तियों की ओर गया है, तब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संस्थान भी व्यक्तियों की बौद्धिक उपज ही हैं। जब समाजशास्त्री आर्थिक जीवन में औद्योगिक समाजशास्त्रीय विचारधारा से हटकर अनुभववाद में रूचि ले रहे थे, तब कुछ विद्वान कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर पूंजीपति और मजदूरों के संबंधों का अध्ययन कर रहे थे।

हेरी ब्रेवरमेन की सुप्रसिद्ध शोध 'लेबर एण्ड मोनोपॉली केपिटल' (1974), माइकेल बुरावॉय की 'मेन्युफेकचरिंग कंसेंट' (1979) तथा मिंट्ज एण्ड श्वार्टज़ (1985) तथा यूसीम (1986), स्टडी ऑफ 'इनर सर्किल' संगठित उद्यम जगत में सामने आए।

इन शोध प्रबंधों में 'समानता की पहेली' पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया था और इन्होंने प्रकार्यवादी समाजशास्त्र द्वारा उत्पन्न गये गतिरोध को हटा दिया था।

पारर्सनस के समाजशास्त्र तथा मार्क्सवाद के पृष्ठ–पट पर 1990 के दशक में आर्थिक समाजशास्त्र का उद्‌भव हुआ जिसने बौद्धिक शून्यता की स्थिति उत्पन्न कर दी थी।

3.3.2 नया आर्थिक समाजशास्त्र

नये आर्थिक समाजशास्त्र की उत्पत्ति प्रमुख रूप से अमेरिका में हुई थी और हाल ही में उनका प्रसार यूरोपियन देशों में हुआ है। दूसरी ओर ग्रेनोवेटर का महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उसने अर्थशास्त्र की गैरवास्तविक आलोचना का विरोध किया और उसका मूल्यांकन सामाजिक संदर्भ में करने पर जोर दिया। उसने अर्थशास्त्र को सामाजिक संरचना का हिस्सा बताया तथा अपने विश्लेषणों में अर्थशास्त्रियों को इस बात के लिए आढ़े हाथों लिया कि वे अर्थशास्त्र को सामाजिक संदर्भों से अलग रखने का असफल प्रयास करते जा रहे थे।

व्यक्ति की मानव प्रकृति व्यक्तियों को सोच के स्तर पर विशेष रूप से इतना अलग कर देती है कि वे निजी स्तर पर अत्यधिक संकीर्ण फैसले लेने लगते हैं। पारस्परिक निर्भरता की अवधारणा अर्थशास्त्रियों को यह अवसर प्रदान करती है कि वे मुनाफा केंद्रित तथा व्यक्तिपरक सोच का विरोध करें और अर्थशास्त्र को सामाजिक सरोकारों से जोड़े। पूर्व परम्परा के अनुसार पार्सन्स तथा स्मैल्सर मूर आदि ने जिस आर्थिक समाजशास्त्र को जन्म दिया था, वह बहुत महत्वपूर्ण था। ग्रेनोवेटर ने पोलेनी तथा अन्य विद्वानों के विचारों को मिलाकर एक ऐसे आर्थिक समाजशास्त्र की रूपरेखा तैयार की जो पुराने तथा नये आर्थिक समाजशास्त्र की अलग–अलग और स्पष्ट व्याख्या करने में सक्षम था। नये तथा पुराने आर्थिक समाजशास्त्र के बीच एक स्पष्ट अंतर यह था कि नया आर्थिक समाजशास्त्र नवशास्त्रीय विचारकों का खुला विरोध करता था, जबकि पुराना आर्थिक समाजशास्त्र इस मामले में सौम्य था तथा उसने आर्थिक आधार वाले नये वैकल्पिक प्रतिमान गढ़ने का कोई प्रयास नहीं किया था।

अपने अस्तित्व में आने के कोई दस वर्ष बाद आर्थिक जीवन का नया समाजशास्त्र (ग्रेनोवेटर, 1990) जिसे नये आर्थिक समाजशास्त्र के रूप में पहचान लिया था। समकालीन समाजशास्त्र की तीन स्पष्ट परम्पराएं उसके सैद्धांतिक विचारों के रूप में सामने आई – जैसे, नैटवर्क सिद्धांत, संगठनात्मक सिद्धांत तथा सांस्कृतिक सिद्धांत। कार्ल पोलेनी ने पूर्व पूंजीवादी दौर में पारस्परिकता निर्भरता के सिद्धांत पर जोर देते हुए कहा था कि अर्थव्यवस्था समाज का जैविक अंग है। ग्रेनोवेटर इस विचार इसके ठीक विपरीत था। वह यह साबित करना चाहता था कि पूंजीवादी समाज में आर्थिक कार्य सही अर्थों में सामाजिक कार्य ही हैं। वह यह तर्क देता है कि आर्थिक क्रिया–कलाप सामाजिक संबंधों को ठोस प्रणालियों पर आधारित होते हैं। इसीलिए वह नेटवर्क की भूमिका पर जोर देता है। (ग्रेनोवेटर 1985 : 487) मुख्य विचार था कि आर्थिक व्यवहार गैर व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित है। अतः नया आर्थिक समाजशास्त्र समाजशास्त्रियों की पहली पीढ़ी द्वारा दी गई अंतर्दृष्टि को ही आगे बढ़ाता है, मात्र आर्थिक परिदृश्य के सामाजिक हस्तक्षेप की बात नहीं करता है। उसने आर्थिक कार्यों की प्रकृति पर सवाल उठाया है और वैज्ञानिक तर्कसंगतता की कसौटी पर खरा उतरते हुए वह अस्तित्व में आया है।

गतिविधि 1

दस गतिविधियों एवं सामाजिक संस्थानों की सूची बनाईए जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अर्थव्यवस्था से संबंध है। क्या आपको नेटवर्क के संबंधों अथवा एक 'उप–व्यवस्था' के तरीके प्रकट होते हैं।

अपने अनुसंधान पर आधारित एक आलेख तैयार कीजिए और उसे अपने अध्ययन केन्द्र पर दूसरे छात्रों के साथ सांझा कीजिए।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिये गये स्थान पर प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1) आर्थिक समाजशास्त्र क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) नया आर्थिक समाजशास्त्र किस प्रकार आर्थिक समाजशास्त्र से भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 अर्थशास्त्र तथा नये आर्थिक समाजशास्त्र में विभिन्न विचारकों का योगदान

पोलेनी द्वारा दिये गये विचारों का निष्कर्ष यह है कि आर्थिक समाजशास्त्र का काम ऐसे उपायो का पता लगाना है जो अर्थशास्त्र की गतिविधियों को नेटवर्क से जोड़ते हैं। कुछ अर्थशास्त्री कहते हैं कि अर्थशास्त्र गतिविधियों बढ़ोतरी के लिए सीधे और छोटे रास्तों पर नहीं चलती है जबकि सच यह है कि वे मौजूदा नेटवर्क की पेचदकियों तथा संस्थागत संदर्भों में रहते हुए काम करते हैं। पोलेनी का विचार था कि औपचारिक लोग बाजारों के माध्यम से तथा बाजारों में किस प्रकार क्या व्यवहार करेंगे यह समझने के लिए औपचारिक विधियाँ काफी हैं। परन्तु ज्यादातर समाजों में इस तरह के संस्थान मौजूद नहीं रहते, ऐसे समाजों में कोई अर्थव्यवस्था की स्वायत्तता की बात नहीं करता; हर कोई अपने स्वयं के विवेक से काम करता है।

3.4.1 कार्ल पोलेनी

इस क्षेत्र में काम करने वाले विद्वानों ने कार्ल पोलेनी के शोध 'द ग्रेट ट्रांस्फार्मेशन' (1957) से दिशा प्राप्त करने का प्रयास किया है। पोलेनी का तर्क था कि बाजारों के

विकास से केवल देश ही प्रभावित नहीं होते अपितु पूंजीवाद बाजारों के चरम अवस्था में पहुँचे पर सामाजिक उथल–पुथल की पूरी संभावना है। पोलेनी ने सुझाव दिया था कि सरकार को स्वयं को बनाये रखने के लिए तथा मजदूरों की सुरक्षा के लिए पूंजीपतियों के समूहों के बीच अंतसंबंधों को बनाये रखने के लिए बाजारों में हस्तक्षेप करना पड़ेगा। जिस तरह से उन्होंने ऐसा किया है, वह आकस्मिक है बाजार–संरचनाओं में अंतर्राष्ट्रीय विविधता की व्याख्या करने में ऐतिहासिक संस्थागत विविधता का योगदान है।

पोलेनी प्रमुख आर्थिक इतिहासकार था जिसने आर्थिक समाजशास्त्र उभरते हुए संकाय के रूप की दिशाओं को निर्धारित किया था। 'द ग्रेट ट्रांस्फोर्मेशन' में पोलेनी अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र के बीच संबंधों पर शोध किया था। इसमें मुख्य रूप से यह बताया गया है कि इंग्लैंड में 19वीं शताब्दी में बिल्कुल नई बाजार केंद्रित समाज की व्याख्या करने के लिए क्रांतिकारी कदम उठाये गये थे। इसके अनुसार बाजार के बारे में सब केवल बाजार ही तय करेगा, किसी अन्य बाहरी व घटक की इसमें दखल देने का अधिकार नहीं होगा। राजनैतिक ताकतों/सरकारों से कीमत तय करने का अधिकार लेकर बाजार को दे दिया जायेगा। बाजार सौम्य या उग्र सामाजिक संस्थानों में अपना स्थान बनाने के लिए सौम्य या उग्र तरीके अपनाने के लिए स्वतंत्र होगा। पोलेनी के विचार में अंततः यह स्थिति ठीक साबित नहीं होगी, इससे इतनी उठापटक की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी कि सब कुछ अस्त–व्यस्त हो सकता है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब बाजारों के सुधारों के नकारात्मक प्रभाव दिखाई देने लगे तो उनको नियंत्रित करने के लिए अनेक कदम उठाने पड़े। इनसे समाज में संतुलन और बिगड़ा। 20वीं शताब्दी में यूरोप में जो फासीवाद उभर कर आया और भीषण युद्धों का कारण बना, वह इंग्लैंड द्वारा 19वीं शताब्दी के मध्य में सब कुछ बाजार के हवाले कर देने का ही दुष्परिणाम था।

पोलेनी का सबसे महत्वपूर्ण विचार पारस्परिक निर्भरता का है, जो उसके समकालीन विचारकों की सोच से बिल्कुल अलग था। पोलेनी के अनुसार जब आर्थिक गतिविधियाँ पारस्परिक निर्भरता के सिद्धांत से हट जाती है या सामाजिक अथवा गैर–आर्थिक ताकतों के नियंत्रण से बाहर हो जाती हैं, तो वे विनाशकारी परिणाम लाती है।

पूंजीवाद के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था पर समाज का नियंत्रण नहीं रहता अपितु इसके ठीक उलट समाज पर अर्थव्यवस्था का नियंत्रण हो जाता है। आर्थिक प्रणाली सामाजिक संबंधों पर निर्भर नहीं रहती अपितु सामाजिक संबंध आर्थिक प्रणाली पर निर्भर हो जाते हैं। पोलेनी का कार्य नयी सामाजिक क्रांति को समझने की नई दृष्टि भी प्रदान करता है। आर्थिक समाजशास्त्र के अन्य विचारात्मक उपकरण पोलेनी के एकीकरण के रूप हैं। उसका सामान्य तर्क यह है कि तर्क आधारित आत्महित जब मनुष्यों के मन में रहता है तब ऐसे मनुष्य समाज की आधारशिला नहीं रख सकते। अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो लगातार भौतिक स्थायित्व प्रदान करती रहे। एकीकरण के तीन रूप या तरीके होते हैं जो अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करते हैं तथा एकीकृत करते हैं। ये है :–

i) पारस्परिकता – यह एक जैसे समूहों के बीच होती है, जैसे परिवार, नातेदारी के समूह तथा आस–पड़ोस।

ii) पुनर्वितरण – इसके माध्यम से उत्पाद या वस्तुएँ समुदाय के केंद्रीय स्थल से निकालकर लोगों तक पहुँचाइ जाती है, जैसे राज्य तथा

iii) विनिमय – इनमें वस्तुएँ बाजार की सहायता से कीमत पर प्रदान की जाती हैं।

3.4.2 मार्क ग्रेनोवेटर (1943–)

मार्क ग्रेनोवेटर ने मुख्यतः इसकी व्याख्या की है कि लोग, सामाजिक परिदृश्य तथा सामाजिक संस्थान किस प्रकार सम्पर्क में आते हैं तथा एक दूसरे को कैसे स्वरूप प्रदान करते है। ग्रेनोवेटर का तर्क था कि अर्थशास्त्रियों का यह विचार कि मौजूदा आर्थिक संस्थान अस्तित्व में आये हैं क्योंकि वे जिस अत्यधिक प्रभावशाली समाधान का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह ठीक नहीं है। ग्रेनोवेटर के अनुसार अर्थशास्त्रियों की यह सोच सामाजिक ऐतिहासिक व वैधानिक संदर्भों में संस्थानों की भूमिका से इनकार करते हैं।

इतना ही नहीं, नये आर्थिक संस्थानीकरण की क्षमता पर जोर देना सामाजिक संरचना के विस्तृत विश्लेषण को हतोत्साहित करता है। ग्रेनोवेटर का आर्थिक निर्भरता पर सुप्रसिद्ध लेख नये आर्थिक समाजशास्त्र का घोषणापत्र माना जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है ग्रेनोवेटर का प्रभावी दृष्टिकोण 1980 के दशक से सामने आया था। उसने पुराने आर्थिक समाजशास्त्र को पार्सनस तथा स्मैल्सर के अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक दृष्टिकोण से जोड़ा था। ग्रेनोवेटर के अनुसार नये आर्थिक समाजशास्त्र का जन्म अर्थशास्त्र के नवशास्त्रीय आर्थिक विचारों की सूक्ष्म समीक्षा से हुआ था। उसकी निर्भरता की अवधारणा अंतर्मानवीय संबंधों के परिदृश्यों की भूमिका पर जोर देती है। यह अवधारणा उसे नितांत निजी प्रतिक्रियाओं की आलोचना तक ले जाती है। (जैसा कि अर्थशास्त्र में कहा गया है) तथा मानवीय कृत्यों का अति समाजीकरण करती है। (जैसा कि शास्त्रीय समाजशास्त्रियों के संरचनात्मक लेखों में तर्क दिया गया है।) इसी प्रकार, मार्क ग्रेनोवेटर के 'गैटिंग ए जॉब' (1975) में नेटवर्क बाजार का एक सफल अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैं। इसमें आर्थिक समाजशास्त्र की भी अनुकरणीय व्याख्या की गई है। ग्रेनोवेटर का यह शोध कार्य नई दृष्टि प्रदान करता है, इसमें तथ्यों का अध्ययन सर्तकतपूर्वक किया गया है, तथा समुचित व स्पष्ट विश्लेषण देखने को मिलते हैं। इस शोध प्रबंध को पढ़ने से पता लगता है कि इसमें उन सामाजिक तरीकों का विश्लेषण किया गया है जिनसे लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। वोस्टन के उप–नगर न्यूटन में श्रमिकों की व्यावसायिक प्रौद्योगिक एवं प्रबंधमूलक प्रवृत्तियों का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें लगभग 280 लोगों ने भाग लिया था, उन्हें जो प्रश्न दिये गये थे उनके उत्तर उन्होंने विस्तारपूर्वक लिखे हैं। इनमें से सौ व्यक्तियों का साक्षात्कार भी किया गया है। अधिकतर प्रश्न नये रोजगार प्रान्त करने संबंधी सूचना स्रोतों पर आधारित हैं। जो प्रश्न पूछे गये हैं उनमें अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रमिक बाजार को एक ऐसे स्थान के रूप में प्रदर्शित किया गया है जहाँ से रोजगार संबंधी सूचनायें सभी लोगों तक पहुंचती हैं। और जो व्यक्ति रोजगार प्राप्त करता है वो रोजगार के अवसर को तलाशने की प्रक्रिया में संलग्न रहने के बाद ही ऐसा कर पाता हैं। रोजगार की तलाश वह अधिकतम उपयुक्तता के सिद्धांतों के आधार पर करता है। ग्रेनोवेटर का निष्कर्ष यह है कि उतिच श्रम बाजार केवल किताबों में ही होते हैं। रोजगार प्राप्त करने के तर्क के बारे में किताबों को जो कुछ बताया जाता है, रोजगार प्राप्त करने की प्रक्रिया व्यावहारिक रूप से इतनी सही नहीं होती है (ग्रेनोवेटर, 1974)।

ग्रेनोवेटर के अनुसार नये आर्थिक समाजशास्त्र की नवीनता यह है कि आधुनिक समय में रोजगार तलाशने वाले लोग बाजारों, व्यापारिक–घरानों तथा संस्थानों के बारे में ठीक से जानकारी प्राप्त नहीं करते तथा वे आर्थिक विचारों की परिकल्पना को भी हल्के से लेते हैं, जिस पहली पीढ़ी के समाजशास्त्री ने व्यापक रूप से स्वीकार किया था। यद्यपि संगठनात्मक सिद्धांतों ने औद्योगिक नियंत्रण तथा पूंजीबाजार के कार्यों की तर्कसंगतता पर जोर दिया है, परन्तु उन्होंने व्यापक सामाजिक संरचनाओं एवं संदर्भों के मंदी, बेरोजगार तथा विकास पद्धतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का समुचित विश्लेषण नहीं किया है। निर्भरता की अवधारणा मनुष्यों के अंतर्संबंधों की भूमिका पर विशेष जोर देती है तथा यह भी बताती है कि उनके द्वारा तैयार किये गये नेटवर्क लोगों में विश्वास पैदा करते हैं। जबकि अर्थशास्त्री भविष्य में होने वाले लेन–देन की निरंतरता पर विशेष रूप से जोर देते हैं और यह मानकर चलते हैं कि यह ही विश्वनीय संबंधों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ग्रेनोवेटर ने इस बात पर जोर दिया था कि इसमें भाग लेने वाले लोगों के पहले के संबंधों तथा विशिष्टताओं को शामिल नहीं किया गया है। अतः व्यक्तियों के आर्थिक जीवन में विश्वास पैदा करने का काम सामाजिक संबंध ही करते हैं, संस्थागत तथा संगठनात्मक व्यवस्थायें नहीं करती। दूसरे शब्दों में यह तर्क दिया जाता है कि अज्ञात बाजार तथा बेनामी व्यापारिक संस्थान जिनकी चर्चा नव शास्त्रीय आर्थिक प्रतिमानों में की गई है, वे वास्तविक आर्थिक जीवन में अस्तित्व नहीं रखते और अंततः सभी प्रकार के लेन–देन सामाजिक संबंधों द्वारा सृजित होने वाली विश्वसनीयता के आधार पर ही चलते हैं। उदाहरण के लिये नेटवर्क का विश्लेषण विभिन्न प्रकार के आर्थिक संपर्कों का पता लगाने के लिये किया जाता है। परन्तु इसे किसी प्रथा अथवा संगठन की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

3.4.3 पॉल डी मैगियो (1951)

आर्थिक समाजशास्त्र अर्थव्यवस्था में संगठनात्मक समाजशास्त्रियों के साथ व्यापारिक संगठनों के सामान्य सरोकार सांस्कृतिक समाजशास्त्रियों के साथ संस्कृति तथा मूल्यों की भूमिका को साझा करती है। पॉल डी मैगियो आर्थिक परिदृश्य की हर व्याख्या में संस्कृति को शामिल नहीं करता। आर्थिक समाजशास्त्री भी अपने कार्यों में नेटवर्क के इस्तेमाल को पूरी तरह सौहार्दपूर्ण नहीं मानते। 1983 में पॉल डी मैगियो तथा वाल्टर पोवैल इस विचार पर काम किया कि ऐसे नेटवर्क को पकड़ा जाये जिनके द्वारा नयी तार्किक प्रथायें विभिन्न संगठना में विसरित होती है – जैसे राजनैतिक नेटवर्क, व्यावसायिक नेटवर्क तथा व्यापारिक निकायों के नेटवर्क। विभिन्न विचारधाराएं एक दूसरे से काफी मिलती–जुलती होती हैं। इसी प्रकार अस्पताल, वाहनों के कारखाने तथा सहायातार्थ संस्थान भी आपस में मिलते जुलते से होते हैं। हर क्षेत्र में करते–करते सीखने और फिर बेहतर काम करने की संभावना बनी रहती है।

डी मैगियो तथा लाउच (1998) संस्थानीकरण के पीछे की संचालन शक्ति की व्याख्या कार बनाने वाले कारखानों के सामाजिक प्रबंधकों से की है जो स्वतंत्र रूप से अपने कार्य को आगे नहीं बढ़ाते अपितु अग्रणी संस्थानों से सीखकर अपने कार्यों की आगे बढ़ाते है। डी मैगियो आर्थिक मामलों में सांस्कृतिक विश्लेषण का प्रमुख समर्थक था। उसने सामाजिक सांस्कृतिक स्थितियों को उन उपभोक्ताओं के संदर्भ में समझने का प्रयास किया है जो गैर बाजारीय संबंधों से जुड़े होते हैं। जिन लोगों से उनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध नहीं होते उनकी विश्वसनीयता की परख करने के लिए वे

सामाजिक संबंधों का सहारा लेते हैं। इस प्रतिमान को 'आधारितता की खोज' कहा जाता है। (डी मैगियो व लाउच, 1998) वैकल्पिक रूप से कार्यरत लोग ऐसे लोगों को व्यापार के लिए चुन सकते हैं जिनके साथ उनके पहले से ही गैर–व्यावसायिक संबंध होते हैं। यह तरीका अपने जाने–पहचाने क्षेत्र के अंतर्गत आदान–प्रदान पर आधारित होता है। दूसरे शब्दों में उसका काम विभिन्न उपभोक्ता बाजारों में मौजूद विभिन्न नेटवर्क की भूमिकाओं की पहचान करना और उनकी व्याख्या करना है तथा विभिन्न प्रकार के बाजारों के सामाजिक संगठनों का पता लगाना है। इस प्रकार के संबंध असंतुष्टि के अनुपात को कम करते हैं, अदृश्य खतरों से बचाते हैं तथा अनिश्चयता से मुक्ति दिलाते हैं। इसके अलावा व्यक्तिगत उपभोक्ता संबंधों की नेटवर्क का इस्तेमाल उसी करते हैं, जैसे व्यापारिक निकाय संगठनात्मक तारतम्यों का इस्तेमाल करते हैं।

उसके काम ने आर्थिक समाजशास्त्र में अनुसंधान की संभावनाओं के नये क्षेत्रों का द्वार खोल दिया था। उदाहरण के लिए राज्य तथा शासन के औपचारिक संस्थानों के अंतर्गत अनौपचारिक संबंधों का पता लगाने में समकालीन दौर में सम्पर्क के दायरों में काम करने की नई अंर्तदृष्टि प्राप्त होती है।

3.4.4 नील फ्लिगस्टीन (1951)

फ्लिगस्टीन ने व्यापारिक निकायों तथा बाजारों के अध्ययन को व्यापकतर कार्यक्षेत्र के रूप में अपनाया तथा संस्थागत, सांस्कृतिक अथवा ऐतिहासिक प्रवृत्तियों का हिस्सा मानकर उनके अध्ययन पर जोर दिया। उसके अनुसार जब सहयोग या अनुपालन गैर–व्यक्तिगत संबंधों तथा उनकी पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है तो यह उन सामाजिक अंतसंबंधों पर भी निर्भर करता है जिनमें लोग शामिल होते हैं। इस प्रकार दो कार्यवत घटकों या व्यक्तियों के पहले से मौजूद संबंध आंशिक रूप से यह तय करते हैं कि वे एक दूसरे को धोखा देंगे या नहीं देंगे, समूचे कार्यक्षेत्र के बारे में सही सच है जिसमें वे दोनों भी शामिल है। निष्कर्षतः आधुनिक बाजारों की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह स्थायित्व पर जोर देता है (फ्लिगस्टीन, 1996, 2001)। इस दृष्टिकोण के अनुसार कार्यरत व्यक्ति अस्थिर आर्थिक वातावरण पसंद नहीं करते अपितु वे स्थायी बाजारों के समर्थक हैं। अमेरिका में बड़े निगमों के मालिकों के काम करने के तरीकों के अध्ययन में फ्लिगस्टीन तर्क करता है कि मालिकी और बैंकों के संबंधों की मौजूदगी बड़े व्यापारिक निकायों की नीतिगत तथा वित्तीय परिणामों का निश्चयन नहीं करते। अमेरिका के न्यापारिक निकायों की नीतिगत तथा वित्तीय परिणामों का निश्चयन नहीं करते। अमेरिका के व्यापारिक निकायों के अध्ययन का आधार के बारे में नील फ्लिगस्टीन ने 'द ट्रांस्फोर्मेशन ऑफ कॉर्पोरेट कंट्रोल' (1990) में स्वामित्व की आर्थिक समाजशास्त्र की अंतर्दृष्टि का वर्णन किया है। फ्लिगस्टीन के अनुसार मुख्य अमेरिकन व्यापारिक निकायों की रणनीतियाँ उनके नियंत्रण की अवधारणा से तय होती है, गैर–वैयक्तिक कार्य–क्षेत्रों से नहीं। वह ग्रेनोवेटर तथा अन्य विचारकों की आधारितता की अवधारणा की आलोचना करता है तथा संस्थान के अंतर्गत बनने वाले संबंधों की ताकत की भूमिका को महत्व देता है। व्यापारिक निकायों के आधुनिकतम सामाजिक अनुसंधानों पर नजर डाले तो स्पष्ट दिखता है कि बाजारों तथा सरकारों की संचालन–शक्तियों विशेष रूप से गतिशील हुई हैं। अंततः फ्लिगस्टीन ने कम्पनियों के संगठनों तथा उनकी कार्यप्रणालियों का अध्ययन करने वाले आर्थिक समाजशास्त्रियों के संगठनात्मक सिद्धांत तथा महत्वपूर्ण नीतियों को रेखांकित किया है।

3.4.5 रिचार्ड स्वेदबर्ग (1948)

रिचार्ड स्वेदबर्ग एक ऐसा समकालीन समाजशास्त्री है जिसने आर्थिक समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा इसे वैज्ञानिक रूप से एक स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में स्थापित करने के लिए भरसक प्रयत्न किये हैं। स्वेदबर्ग सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री वेबर से अभिप्रेरित था। उसने आधुनिक आर्थिक विश्व में बाजार की बदलती संरचनाओं का अध्ययन किया है। उसका मानना है कि बाजार को मुद्रा–विनिमय स्थल मात्र न समझा जाय बल्कि उसे एक सामाजिक रूप में देखा जाय। उसके अनुसार इस क्षेत्र को अपने आकार और अवधारणाओं का विकास स्वयं करना चाहिये। उदाहरण के लिये, वह इस बात पर जोर देता है कि आर्थिक जीवन की सामाजिक व्याख्या की संस्कृति एक महत्वपूर्ण अंग है। वो यह सुझाव देता है कि समाजशास्त्र को संबंधों, लक्ष्यों, मानवीय हस्तक्षेपों तथा मानवीय सार्थकताओं गहरी रूचि लेनी चाहिये जिससे अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों को विकसित किया जा सके। अर्थशास्त्र के अमूर्त सिद्धांतों की आलोचना करते समय उसका यह रुझान रहता है कि गरीबी, खपत तथा आर्थिक विकास जैसे विषयों की व्याख्या करते समय उनके भौतिक घटकों पर विशेष जोर दिया जाना चाहिये। अपनी इस समझ के आधार पर स्वेदबर्ग ने रूचि की अवधारणा का विकास किया। बोर्दयू के अनुसंधान कार्य पर विचार करते समय स्वेदबर्ग ने सामाजिक संरचना के लिये रूचि पर विशेष रूप से जोर दिया है, उसने यह भी कहा है कि सामाजिक रूचि, जैविक रूचि तथा मनोवैज्ञानिक रूचि से नितांत भिन्न होती है। पूर्वकाल के समाजशास्त्री पार्संस आदि का विचार यह था कि उपयोगितावादी परंपरा के अस्तित्व में रूचियों का विशेष रूप से महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दूसरी ओर स्वेदबर्ग सामाजिक रूचि को सामाजिक गतिविधियों तथा सामाजिक स्वरूप के केन्द्र में रखता है। ऐसा करते हुए वह बाजारों, व्यापारिक निकायों तथा व्यापक पूंजीवादी व्यवस्था की गतिशीलता की व्याख्या करता हैं।

गतिविधि 2

अपने नगर के छोर पर लगने वाले ग्रामीण व नगरीय लक्षणों वाले साप्ताहिक बाजार में जाइये और उपभोक्ताओं के व्यवहार का अध्ययन कीजिये तथा उसके आधार पर उनके सौदेबाजी के प्रयासों –पसंद न आने वाली चीजों की अपेक्षा करना तथा अधिक मंहगी चीजों को चुनने से इनकार करने की प्रवृत्ति आदि का केन्द्र में रखते हुए व्याख्या कीजिये।

नगर के प्रमुख भाग में स्थित किसी बड़े माल में जाइये वहां खरीददारों के व्यवहार का अध्ययन कीजिये तथा वे किस प्रकार मोल भाव करते हैं उसको केन्द्र में रखते हुए समाजशास्त्रीय समस्याओं जैसे उपभोक्ताओं के सामाजिक वर्ग, उनकी वेशभूषा तथा हाव–भाव आदि की व्याख्या करते हुए एक पृष्ठ का आलेख तैयार कीजिये जिन दोनों स्थलों पर अपने उपभोक्ताओं तथा उनकी गतिविधियों का अध्ययन किया है उसके आधार पर दोनों बाजार स्थलों तथा उनसे जुड़े संदर्भों में क्या–क्या समानताएं हैं और क्या–क्या असमानतायें है उनकी व्याख्या कीजिये, फिर अपने अध्ययन केन्द्र में अपने साथ छात्रों के साथ इस विषय पर विचार विमर्श कीजिये।

बोध प्रश्न 2

1) कार्ल पोलेनी ने आर्थिक जीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक आयामों की जो व्याख्या की है, उसका वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मार्क ग्रेनोवेटर द्वारा लिखित पुस्तक का नाम बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

3) रिचार्ड स्वेदबर्ग के विचारों की लगभग छः पंक्तियों में व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 आर्थिक जीवन की सामाजिक व सांस्कृतिक निर्भरता : वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य

पार्संस के आदर्श के ठीक विपरीत नये आर्थिक समाजशास्त्र तथा संस्थागत अर्थशास्त्र की वापसी ने नव शास्त्रीय अर्थशास्त्र के विकल्पों के रूप में काम किया है, संपूरकों के रूप में नहीं। बड़े स्तर का समाजशास्त्र जो सामाजिक कार्य–क्षेत्र तथा संस्थागत व्यवस्थाओं के प्रतिच्छेदन पर जोर देता है। यही कारण हे कि आर्थिक समाजशास्त्री इस मामले में रूचि लेते रहे हैं कि बाजार किस प्रकार अपनी वैधानिकता और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करता है जिससे वह अपना निरंतर अस्तित्व बनाये रख सके। नया आर्थिक समाजशास्त्र उद्यमशीलता का अध्ययन स्वतंत्र रूप से छानबीन के माध्यम से करता है नये आर्थिक समाजशास्त्र की प्रकृति सामाजिक व्यक्तिगतवाद की पकड़ से मुक्त होना हैं।

उद्यमशीलता व्यक्ति की सोच के केंद्र में उद्यम का विस्तार करते हुए अधिक पैसा कमाना होता है, अंतः वह अपने आपको उन मनोवैज्ञानिक कमजोरियों से ऊपर उठाने का प्रयास करता है जो उसे भावनाओं के संझावात के लपेटे में ले सकती हैं। आगे बढ़ने का एक रास्ता उद्यमशीलता के सामूहिक गतिविधि के रूप में विश्लेषण करना है। यह नीचे दिये गये तीनों घटकों सम्मिलित करके चलता है –

(i) नेटवर्क सिद्धांत, (ii) संगठनात्मक सिद्धांत (iii) उद्यमशीलता की गतिशीलता का अध्ययन करने वाला सांस्कृतिक समाजशास्त्र। नेटवर्क के अंतर्गत व्यक्ति का व्यवहार

तथा अन्य भूमिकाओं में व्यक्तियों के व्यवहार की समझ शामिल होती है। उसी प्रकार सम्पत्ति के सवाल को इस क्षेत्र में समग्रता के साथ नहीं देखा जाता है।

नया आर्थिक समाजशास्त्र संपत्ति की संरचना की नई अंतर्दृष्टि रखता है – यह अंतर्दृष्टि भारत, चीन तथा ब्राजील जैसे विकासशील देशों में देखी जा सकती है। व्यक्तिगत स्वामित्व में संस्थानों की भागीदारी रहती है और सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में यह पद्वति किस प्रकार आकार ग्रहण करती है। थॉमस पिकेटी का शोध 'केपिटल इन टवैंटी फर्स्ट सेंचुरी' (2014) ने समाजशास्त्रियों के सामने विरासत में प्राप्त होने वाली संपत्ति को लेकर नया सवाल उठाया है कि क्या इसके कारण असमानता में पुनरूत्पत्ति नहीं होती? इससे इन देशों में संपत्ति की असमानता के अदृश्य क्षेत्र का द्वार खुलता है। इन देशों की जनसांख्यकीय रूपरेखा इसका प्रबल उदाहरण है। किसको क्या प्राप्त होता है और कैसे को केंद्र में रखने वाले बाजार तथा पूंजीवादकी आर्थिक गतिविधियों के अंतिम परिणामों से आर्थिक समाजशास्त्रियों का कोई सरोकार नहीं है, ऐसा मान लें तो अजीब सा लगता है आर्थिक शक्ति का सीधा संबंध राजनैतिक शक्ति से भी होता है। ये दोनों ताकतें ही जनता की नीतियों को तय करती हैं जिनके आधार पर मनुष्यों की रूचियों तथा उनके व्यवहार आकार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार की शक्ति आर्थिक संस्थानों तक आर्थिक मानदंडों को राजनैतिक कार्य–क्षेत्रों, औद्योगिक कार्य क्षेत्रों तथा व्यावसायिक कार्य–क्षेत्रों के माध्यम से संचालित करती है तथा नई नीतियों तथा व्यापारिक रणनीतियों का निश्चयन करती है। दूसरे शब्दों में आर्थिक समाजशास्त्री वास्तविक बाजारों की क्षमता से कहीं ज्यादा उनकी निष्पक्षता को महत्व देते हैं।

पिछले दशको के दौरान यह दृष्टिकोण आधारितता से आगे जाकर कुछ नयी तथा बिल्कुल अलग धारणा अस्तित्व में जाने का प्रयास करता रहा है। उदाहरण के लिए फ्रांस के एक समाजशास्त्री पियरे बोरदयू ने आधारितता के सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा है – ''आधारितता की अवधारणा संरचनात्मक घटकों की व्याख्या करने में असमर्थ साबित हुई है''। आर्थिक व्यवहार की प्रकृति को तय करने वाली व्यापक समस्याओं की व्याख्या करने में यह अवधारणा पूरी नाकाफी है।

उदाहरण के लिए कीमतें क्षेत्र की संरचना द्वारा ही तय होती हैं, किसी अन्य तरीके से तय नहीं की जा सकती। 'आर्थिक' आदत की धारणा भी विशेषरूप के सामाजिक मनोवैज्ञानिक आयाम में वृद्धि करती है जो ग्रेनोवेटर तथा अन्य विचारकों के सिद्धांतों में नहीं पाई जाती। (बोरदयू, 2005) आर्थिक व्यक्तिगत उद्यमी भी अपने सामाजिक अनुभवों की ही उपज हैं परन्तु यह सब इस तरह अंतर्निहित है कि इसका 'उन्हें पता ही नहीं लग पाता। क्षेत्र उनकी रूचियों का सृजन करता है, आर्थिक क्षेत्र में उनकी रणनीति तथा दिशानिर्देशन की निर्मित भी करता है। कम्पनियों के शीर्ष पर अथवा राजनैतिक तथा नौकरशाही क्षेत्रों में भी तथा नीति–निर्धारण एवं दिशा निर्देशन करता है। इस प्रकार बोरदयू मौलिक समाजशास्त्री सिद्धांत पद्धति द्वारा शास्त्रीय तर्कसंगत व्यावहारिक कार्य सिद्धांत को चुनौती देता है और इस प्रकार क्रमिक निरीक्षण का मार्ग प्रशस्त करता है। आर्थिक संरचनाएं व्यक्तिगत तथा सामूहिक कार्यों के लिए सुदृढ़ अभिनव रूपरेखाएं हैं, उन्हें विभिन्न ग्रंथियों के बीच अंतसंबंधों के नेटवर्क के रूप में कमतर नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनकी जड़ें ऐसे बहुआयामी सामाजिक परिवेशों में गहराई तक स्थित हैं जो विभिन्न प्रकार की पूंजियों के वितरण द्वारा मौलिक रूप से निर्मित हैं। (प्रतीकात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक पूंजियां)।

पूरे आर्थिक खेल में आर्थिक भ्रम के रूप में आर्थिक क्षेत्र में 'अवस्थित' विश्वास (धंधा आखिर धंधा है) एक जटिल ऐतिहासिक उत्पाद है। बोरदयू रूचि की अवधारणा को समस्याग्रस्त रूप में देखता है और अर्थशास्त्रियों में मौजूद अर्थव्यवस्थावाद में रूचि की अवधारणा को विरोधों का पुलिंदा मानता है। उसके अनुसार रूचियां समाज की संरचनाएं हैं। अपने आवास उद्योग पर किए गए शोध 'द सोशल स्ट्रक्चर्स ऑफ द इकॉनोमी' (2005) में उसने इस क्षेत्र में कार्यरत निकायों के बीच तथा व्यक्तियों के लिए किये जाने वाले कामों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धाओं को रेखांकित किया है। बोरदयू ने विभिन्न प्रकार के खरीदारों की आदतों पर सावधानी से अध्ययन किया है तथा 1980 के दशक में मध्यकाल आरंभ करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर उसका सर्वेक्षण किया है। वहाँ बाजार में बेचे जाने वाले आवास ग्रहों को वित्तीय उपक्रम मात्र नहीं मानता है। आवासग्रहों की खरीद–फरोख्त से जुड़े लोग इसमें केवल अपना पैसा ही नहीं लगाते, अपितु अपना समय भी खर्च करते हैं, उन पर काम भी करते हैं और उनकी भावनाएं भी उससे जुड़ी होती हैं। घर वह स्थान हैं जहाँ उनके परिवार के लोग निवास करने वाले हैं। इसलिए घर की खरीदारी में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा प्रतीकात्मक घटकों का भी विशेष रूप से महत्व है। घरों के उत्पादन क्षेत्र से जुड़े लोगों के बारे में राष्ट्रीय आंकड़ों तथा अनुकूलन आधारित विश्लेषण की सहायता से आवश्यक जानकारी प्राप्त की जाती है।

ल्यूक बोल्टेंस्की तथा ईव चाइपेलो ने अपने शोध 'द न्यू स्प्रिट ऑफ केपिटेलिज्म' (2005) में राजनैतिक अर्थव्यवस्था के साथ विचारधारा तथा सांस्कृतिक विश्लेषण को सम्मिलित कर नये प्रकार से अध्ययन प्रस्तुत किया है। उसका कहना है कि नव–पूंजीवाद श्रमिक वर्ग के महत्व को पीछे धकेलते हुए किस प्रकार फल–फूल रहा है। लेखकों के अनुसार पूंजीवाद निरंतर रूप बदलता हुआ समाज में अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बनाता जा रहा है। पूंजीवाद के आलोचक व्यवस्था के अंग बनते हुए किस प्रकार कमजोर पड़ते जा रहे हैं। नये प्रतिकारों के सामने आते ही, वे चारों खाने चित हो जाते हैं और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विरोध करने लायक बचते ही नहीं। बोल्टेंस्की और चाइपेलो तर्क देते हैं कि ठेका श्रमिकों की लचीली श्रम–प्रणाली पूंजीवादी प्रणाली को पांव जमाने में मददगार साबित हो रही है। इन लेखकों ने पूंजीवाद की तीसरी 'विचारधारा' 'थर्ड स्प्रिट' द्वारा 1960 और 1990 के बीच के प्रबंधन विवरणों का अध्ययन करके नये प्रकार के पूंजीवाद की खोज की है।

दूसरे शब्दों में उनका शोध–कार्य पूंजीवादी प्रणाली के काम करने के तरीकों को समझने के लिए व्यावहारिक आयाम प्रस्तुत करता है तथा पूंजीवादी प्रणाली पर काम करने वाले वर्ग के विश्वासों व औचित्य को व्यापक कर राजनैतिक अर्थव्यवस्था से जोड़ता है। बोल्टेंस्की ने पूंजीवाद के नेटवर्क के सिद्धांत की प्रकृति को वैचारिक रूप से रूढ़िवादी परन्तु पूंजीवाद का समर्थक बताते हुए उसकी निंदा की है। उसके विचार में यह सिद्धांत मनुष्यों व मशीनों के बीच उन सम्बंधों की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता जिनके मौजूद रहते हुए मनुष्य कारखानों तथा व्यापारिक निकायों में काम करते हैं।

आर्थिक समाजशास्त्र में नये विकास के अनेक मामले सामने आये हैं। ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक आर्थिक समाजशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में नये प्रयासों में बढ़ोतरी हुई है। समाजशास्त्रियों में ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विषयों के सफल विश्लेषण की परम्परा बहुत लम्बी है। कभी–कभी यह तर्क दिया जाता है कि इन दोनों विषयों पर आर्थिक समाजशास्त्र में अर्थशास्त्र से भी ज्यादा काम हुआ है। आर्थिक समाजशास्त्र आज जिस

स्थिति में हैं, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अब यह अपनी विशिष्ट पहचान के साथ समाजशास्त्र का उपविषय बन चुका है। आज यह एक उपेक्षित विज्ञान नहीं रह गया है, जैसा कि एक पीढ़ी पहले लुइस वर्थ ने कहा था। यह महसूस किया गया कि आर्थिक समाजशास्त्र के लिए यह जरूरी था कि यह अपनी अलग पहचान बनाता जिससे यह मुख्य धारा नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र से हटकर अपना अलग अस्तित्व साबित कर पाता। इतना ही नहीं उसे अर्थशास्त्र की अन्य विचार धाराओं से अलग हटकर भी अपनी पहचान बनानी थी, जैसे सामाजिक अर्थशास्त्र तथा पुराना संस्थानवाद। यह स्पष्ट है कि 1990 तथा उसके बाद के कुछ वर्षों में भी लगातार आर्थिक समाजशास्त्र पर अनेक अध्ययन हुए। जैसे आजकल इस पर काफी अध्ययन हो रहा कि कैसे विविध बाजार वित्तीय समाजशास्त्र के क्षेत्र में अपनी जगह बनाते जा रहे हैं।

नये आर्थिक समाजशास्त्र ने ऐतिहासिक सामग्री तथा तुलनात्मक विचारधाराओं को व्यापक रूप को एक साथ मिलाने के प्रयास किए हैं। नया आर्थिक समाजशास्त्र व्यापारिक निकायों की संरचना को उजागर करने के लिए करता रहा है तथा निगमों और मध्यवर्ती निकायों के बीच संबंधों का पता लगाने के लिए संगठनात्मक सिद्धांत का सफलतापूर्वक इस्तेमाल करता रहा है। परन्तु ऐसे अनेक क्षेत्र है जो आर्थिक समाजशास्त्र में आते हैं, और उनकी व्याख्या कम हो पाई है। इनमें से कुछ पर इस इकाई में विचार किया गया है। जैसे – व्यापारिक निकाय, रूचि प्रारूपण, नैतिक अर्थशास्त्र। साथ ही स्तरीकरण के सिद्धांत तथा आर्थिक समाजशास्त्र को एक साथ लाने का प्रयास भी किया गया है। आर्थिक समाजशास्त्रियों ने आर्थिक जीवन में प्रौद्योगिकी की भूमिका पर भी अपना ध्यान केंद्रित किया है।

आधुनिक आर्थिक व्यवस्था को समझने के लिए आर्थिक समाजशास्त्रियों को धन, मीडिया, आर्थिक विचारधाराओं, संचयन की रणनीतियों, नैतिक व लैंगिक अर्थशास्त्र तथा व्यतिरेकों के स्रोतों आदि का विशेष रूप से अध्ययन करना अपेक्षित है। आर्थिक वास्तविकता की व्याख्या तथा उसके हस्तक्षेप को समझने के लिए दो मौलिक कार्य किये जाने जरूरी हैं। नये आर्थिक समाजशास्त्र को लगातार लचीला रहना पड़ेगा, अपने विश्लेषणों पर ध्यान केंद्रित रखना होगा तथा यह पता लगाना होगा कि मौजूदा आर्थिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को अपने आप में समाहित करने के तरीके क्या–क्या हैं।

3.6 सारांश

'नये आर्थिक समाजशास्त्र' नामक इस इकाई में नये आर्थिक समाजशास्त्र की विशद व्याख्या की गई। समाजशास्त्र के उप विषय आर्थिक समाजशास्त्र के बारे में कार्ल पोलेनी के विचार प्रस्तुत किये गये। मार्क ग्रेनोवेटर की सूचना तथा आधारितता की धारणा का वर्णन किया गया। पॉल डी मैगियो, नील फ्लिंगस्टीन तथा रिचार्ड स्वेदबर्ग के विचारों से अवगत कराया गया।

अंत में आर्थिक जीवन की सामाजिक–सांस्कृतिक आधारितता तथा अन्य अनेक परिप्रेक्ष्यों पर विचार किया गया।

3.7 संदर्भ

ल्यूक बोलटेंस्की एण्ड ईव चाइपेलो (2005). 'द न्यू स्प्रिट ऑफ केपिटेलिज्म, लंदन : वर्सो।

पियरे बोरड्यू (2005). 'द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ द इकोनॉमी : पोलिटी प्रैस केम्ब्रिज।

डी मैगियो, पॉल एण्ड हूज लाउच (1998) सोशली एम्बेडिड कस्टमर ट्रांजेक्शन्स : फॉर हाट काइंड्स ऑफ परचेज़िज डू पीपुल मोस्ट ऑफ न यूज नेटवर्क, अमेरिकन सोश्योलॉजिक रिव्यू – 63 : (5), 619–637।

नील फ्लिंगस्टीन एण्ड ल्यूक डॉटर (2007). द सोश्योलॉजी ऑफ मार्केट्स : एन्युअल रिव्यू ऑफ सोहयोलॉजी 33 : 105–128।

नील फ्लिंगस्टीन (1996). मार्केट्स एज पॉलिटिक्स : ए पॉलिटिकल कल्चरल एप्रोचे टू मार्केट इंस्टीट्यूशन्स : अमेरिकन सोश्योलॉजिक रिव्यू 61 (4) : 656–673।

मार्क ग्रेनोवेटर (1985). इकॉनोमिक एक्शन एण्ड सोशल स्ट्रक्चर : द प्रोब्लम ऑफ एम्बेडेडनैस; अमेरिकन जर्नल ऑफ सोश्योलॉजी–91 (3) : 481–510।

जे. नील स्मेल्सर एण्ड रिचार्ड स्वेदबर्ग (2005). द हेंडबुक ऑफ इकॉनोमिक सोश्योलॉजी, सेकेंड एडीशन : न्यू जर्सी : प्रिंसेंटन यूनीवर्सिटी प्रैस।

जे. नील स्मैल्सर एण्ड रिचार्ड स्वेदबर्ग (2005). 'मार्केट्स इन सोसाइटी'. प्रिंसेंटन यूनिवर्सिटी प्रैस।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आर्थिक समाजशास्त्र विभिन्न समाजों में लोगों के आर्थिक जीवन से संबंधित है। यह बाजार तथा सामाजिक कार्यक्षेत्र का अध्ययन करता है। यह बताता है कि विभिन्न समुदायों तथा संस्कृतियों के सामाजिक जीवन क्या प्रभाव पड़ते हैं।

2) आर्थिक समाजशास्त्र की दुनिया में हाल के वर्षों में नये आर्थिक समाजशास्त्र का उद्भव हुआ है। मार्क ग्रेनोवेटर की आधारितता का अवधारणा के विकास के बाद नया आर्थिक समाजशास्त्र पर्याप्त रूप से चर्चा में आया है। आर्थिक जीवन में गैर आर्थिक घटकों की भूमिका को रेखांकित करते हुए उसने नये संस्थागत अर्थशास्त्र की नये तरीका से सिलसिलेवार आलोचना की है।

बोध प्रश्न 2

1) कार्ल पोलेनी का विश्वास था कि बाजारों की निर्मित के लिए राज्यों का सहयोग व सहमति जरूरी है तथा पूंजीवादी बाजार अंततः सामाजिक उथल–पुथल उत्पन्न करेंगे। कार्ल पोलेनी यह मानता है कि सरकारों को सामुदायिक हितों के संरक्षण को ध्यान रखते हुए बाजारों में हस्तक्षेप करना चाहिए तथा पूंजीपतियों के समूहों को बाजारों को नियंत्रित करना चाहिए। उसने सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह कही है कि सामाजिक नियंत्रण की निर्भरता से मुक्त होने के बाद आर्थिक प्रक्रम

विनाशकारी हो जाता है। उसका विश्वास था कि पूंजीवाद की वास्तविकता समस्या यह है कि समाज अर्थव्यवस्था को नियंत्रित नहीं करता, अपितु अर्थव्यवस्था समाज को नियंत्रित करती है। पहले अर्थव्यवस्था सामाजिक संबंधों पर आधारित हुआ करती थी, परन्तु अब संबंध अर्थव्यवस्था पर आधारित होने लगे हैं।

2) मार्क ग्रेनोवेटर ने 1985 में – 'इकॉनोमिक एक्शन एण्ड सोशल स्ट्रक्चर : द प्रोब्लम ऑफ एम्बेडेडनैस, अमेरिकन जर्नल ऑफ सोश्योलॉजी 91 (3) : 481–510 शोध प्रबंध तैयार किया था।

3) रिचार्ड स्वेदबर्ग (1948) मेक्स वेबर से प्रभावित था। उसने आधुनिक आर्थिक दुनिया में ऐतिहासिक संदर्भ में बाजारों की संरचनाओं में आने वाले बदलावों का अध्ययन किया था। उसने इस बात पर जोर दिया था कि आर्थिक जीवन के समाजशास्त्र को समझने के लिए संस्कृति का विशेष महत्व है। अतः उसका मानना था कि समाजशास्त्र को संबंधों, लक्ष्यों, मानवीय हस्तक्षेपों तथा अर्थव्यवस्था को अर्थ प्रदान करने में रूचि लेनी चाहिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY